जैन स्वाध्याय सुभाषित माला

द्वितीय भाग

●

संकलनकर्ता

आचार्य श्रीहस्तीमलजी महाराज

●

सम्पादक

श्री शशिकान्तझा "शास्त्री"

प्रकाशक

सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल

जयपुर

वीर स० २४९८
विक्रम स० २०२८
ईस्वी १९७१

प्रथम सस्करण
१०००

मूल्य दो रुपये
२) रु०

मुद्रक—
शुभदा प्रिन्टर्स
जोधपुर (राज०)

प्रकाशकीय

"जैन स्वाध्याय सुभाषित माला" का द्वितीय भाग, पाठको की सेवा मे उपस्थित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

सुभाषित का मानव-मन पर गहरा, अथच आकर्षक प्रभाव पडता है। इसके अध्ययन से जीवन मे जागृति और उत्साह का सचार होता है। अत सुभाषित सग्रह जन-मन के लिए कितना आवश्यक और उपयोगी है, इस पर कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नही है।

आचार्य श्रीहस्तीमलजी महाराज जैन जगत् से अपरिचित नही है। आपके द्वारा प्रवचन मे प्रयुक्त सुभाषित वचनो का यह सकलन कितना रोचक एव उपयुक्त है, इसका अनुभव पाठक स्वय करेगे। इसमे प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी और उर्दू के मर्म-स्पर्शी सुभाषितो का सक्षिप्त सग्रह है।

जोधपुर (कन्या पाठशाला) मे आचार्यश्री के हुए इस चतुर्मास की स्मृति को सजीव बनाए रखने के लिए मडल ने शीघ्रता मे जोधपुर मे ही इसका प्रकाशन करवाया। अत सभव है कि प्रमादवश या यान्त्रिकदोषवश प्रकाशन मे कुछ दोष रह गए हो। सहृदय पाठक इसकी जानकारी करायेंगे तो आगे उसका सुधार हो जाएगा।

इसके प्रकाशन–व्यय मे श्रीमान्‌उमरावमलजी साहव मेहता जालोरी 'जोधपुर' की धर्मपत्नी श्रीमती रतनकवर वाई ने मण्डल को पाचसो ५००) रुपये की सहायता प्रदान कर हमारे प्रकाशन–उत्साह को आगे वढाया है । इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र है।

आशा है, पाठक इस पुस्तक के स्वाध्याय से जीवन को समुन्नत कर, इस सग्रह प्रयास को सफल बनायेगे।

निवेदक

इन्द्रनाथ मोदी
(जोधपुर) अध्यक्ष

नथमल हीरावत
(जयपुर) मन्त्री

सम्यग् ज्ञानप्रचारक मडल

म्पादकीय

मानव ससार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। सभ्यता सस्कृति, आचार-विचार, भेष-भूषा, धर्म-नीति आदि जिस किसी भी दृष्टि से देखने पर यह सहज समझा जा सकता है कि जगत् का कोई भी जीव मानवीय-महत्ता को पाने मे समर्थ नही है। मानव अपने अनुपम उत्साह, सूझ बूझ और प्रखर-ज्ञान-साधन के बल पर, न केवल अमर-सम्मानित-सुखोपभोग को ही प्राप्त करता, वरन् जन्म-मरण की जड काट कर शिवपुर का वासी भी बन जाता है।

मानव-जीवन की उन श्लाघनीय-विशेषताओ के, जिनसे कि वह लक्ष्य के शिखर तक पहुचने मे समर्थ होता, प्रसार और प्रचार मे, भाषा का प्रमुख हाथ रहा है। वस्तुत यदि जन-जीवन मे भाषा का माध्यम नही होता तो हमारी सभ्यता और सस्कृति का यह आधुनिक समुज्ज्वल-विकसित रूप, आखो से ओझल ही रहता। दया, दाक्षिण्य तथा करुणा विहीन मानव समाज को करुणा-कातर और दया-द्रवित बनाने मे भाषा की उपादेयता अभिनन्दनीय एव सराहनीय है।

यो तो हम अपने मनोभावो को, सीधी-सादी बोलचाल की भाषा मे प्रयोग कर भी लोकव्यवहार चलाते है, किन्तु श्रोताओ के मन पर जो चमत्कार सुभाषितो का होता, वह जैसी

तैसी कही जाने वाली भाषा का नही। भाषा प्रयोग का प्रयोजन ही पर मन को आकृष्ट करना माना गया है, और इस रूप मे सुभाषित का स्थान सर्वोच्च और महान् है। यह प्रख्यात धनुर्धर के तीर की तरह लक्ष्य पर चोट किए विना नही रहता। अत समय समय पर दूसरो के मन को मुग्ध और लुब्ध बनाने के लिए, ससार की प्रत्येक भाषा मे, सुधीजनो ने हित, मित, सुललित, सुभाषित का प्रयोग प्रचलित कर, भाषा भण्डार भरने का स्तुत्य प्रयास किया है।

सुभाषित वचनो मे जादू जैसा अलौकिक चमत्कार देखा जाता है। जीवन के विविध प्रसगो पर ये नपे तुले मजुल शब्द थोडे मे महान् भावो को प्रगट करते हैं। जिनसे कि लोग प्रभावित हुए विना नही रहते।

सुभाषित रत्न का भण्डार इतना समृद्ध और समुन्नत है कि जिसका कुछ वर्णन नही। जीवन का सभव ही कोई कोना ऐसा वचा हो, जिसपर सुभाषित रचयिताओ की पैनी दृष्टि न गई हो। वे जीवन को सजीव और सप्राण वनाए रखने के लिए, जीवन-यात्रा की प्रत्येक स्थिति पर सुभाषित का प्रयोग किये है। जिनसे कि कायर मे पौरुष, अधीर मे धैर्य, व्यथित मे उल्लास, दु खी मे सुख, चिन्तित मे शान्ति एव रुग्ण मे शोभन स्वास्थ्य का सहज दर्शन हो सके। उन्होने सुभाषित के द्वारा हत, प्राण व्यक्तियो मे नव-जीवन फू कने का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

विकट-घडियो मे सुभाषित, रामबाण की तरह अमोघ सिद्ध होता है। यदि मनुष्य इन वचनो पर जीवन को ढाले तो निश्चय इनमे जीवन की सारी उलझी गुत्थियां क्षण पल मे सुलझ सकती है। सुभाषित की कोमल कान्त पदावली न केवल श्रुति

मधुर, रुचिर और द्राक्षा की तरह मृदु ही होती, वरन् जीवन को जाग्रत और उजागर भी बनाती है।

जैनाचार्य पूज्य श्री १००८ श्री हस्तीमलजी महाराज साहब स्वाध्याय के परम प्रचारक एव प्रसारक एक विचक्षण सन्त है। आप समाज मे स्वाध्याय का विकसित रूप देखने के लिए सतत प्रयत्न शील बने रहते है।

आपने समाज को स्वाध्याय शील बनाने वाले, स्वाध्यायी बन्धुओ की ज्ञान-पिपासा की शान्ति के लिए, अनेक-विध ज्ञान-वर्द्धक सामग्रियो मे, सुभाषित को भी एक आवश्यक अग माना और इसके लिए प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी, एव उर्दू के कतिपय चुने सुभाषितो का एक सकलन कराया, जो कि इस रूप मे, आप सबके सामने है। इसके पूर्व भी आप द्वारा सकलित "जैन स्वाध्याय सुभाषित माला" के नाम से एक पुस्तक प्रकाशित होकर पाठको के बीच समादृत रही है।

इसके स्वाध्याय से, हम सब को, जीवन-यात्रा मे पद पद पर, सफलता की प्राप्ति सभव और सुलभ है। अगर इन अनमोल वचनो के आधार पर हमारा आचार-विचार बना रहा तो निश्चय जीवन मे एक जीती जागती निखार आए विना नही रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक मे सुभाषितो का दिग्दर्शन मात्र किया गया है। श्रद्धेय आचार्यश्री अपने दैनिक प्रवचन मे, बहुधा इनका प्रयोग करते रहते है। स्वाध्यायी बन्धु जब कभी जीवन मे मन को अकुलाने वाली बाधाओ का अनुभव करेंगे, विपरीत परिस्थितियो मे अपने को विचलित पाए गे तो विक्षोभ की उस घडी मे, इन सुभाषितो का सस्मरण, उनके मानस मे,

साहस और शक्ति का सचार करने मे सहायक होगा। वे इसके सहारे,समस्त उलझनो और कठिनाइयो का सरलता से सामना कर लेगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

हमने आचार्यश्री के सकेतानुकूल, इन सुभाषितो का आलेखन एव सम्पादन किया है। सभव है, कि हम अपने इस दायित्व-निर्वाह मे स्खलित और च्युत हो गए हो, तो सहृदय पाठक, इसे मानव-सुलभ दोष जान कर क्षमा करेगे।

अन्त मे, मैं जोधपुर के धर्मप्रेमी तरुण श्रीमाणकमलजी भडारी एव "शुभदा प्रिन्टर्स" के अनुभवी,कर्मठ, प्रबन्धक श्री जगदीशजी ललवाणी को साधुवाद दिए बिना नही रह सकता जिनकी पूर्णमुस्तैदी और सत्प्रयास से समय पर यह काम सम्पन्न हो पाया।

घोडो का चौक
(जोधपुर)
दिनाक ३०–१०–१९७१

विनयावनत
शशिकान्त "झा"

विषय-सूची

१

मंगलाचरणम्

प्राकृत

जिणे पासे त्ति नामेण अरहा लोग-पूइए।
सबुद्धप्पाय सव्वन्नू धम्मतित्थयरे जिणे। १

अर्थ—जितेन्द्र पार्श्वनाथ नाम के अर्हन् लोकपूजित हैं। वे स्वय-बोधप्राप्त, सर्वज्ञ, धर्म तीर्थंकर और रागद्वेष के विजेता जिनेश्वर है।

जयइ सुयाण पभवो तित्थयराण अपच्छिमो जयइ।
जयइ गुरू लोगाण, जयइ महप्पा महावीरो। २

अर्थ—द्वादशागी श्रुत के प्रभव - उत्पत्तिस्थान, अन्तिम तीर्थंकर जयवान् हो। लोक गुरु महात्मा महावीर की जय हो।

सस्कृत

वीर पार्श्व नमि सुपार्श्वसुविधि श्रेयासमल्लि शशि।
नेमिर्नाभिज-वासुपूज्य-विमला पद्मप्रभ' शीतल'।

कुन्थु शान्त्यभिनन्दनारक - मुनिर्धर्मोऽजित सभवोऽ-
नन्त श्री सुमतिश्च तीर्थपतय कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ३

अर्थ—भगवान महावीर, श्री पार्श्वनाथ, नमिनाथ, सुपार्श्वनाथ, सुविधिनाथ, श्रेयाभनाथ, मल्लिनाथ, चन्द्रप्रभ, नेमिनाथ, ऋषभदेव, वासुपूज्य, विमलनाथ, पद्मप्रभ, शीतलनाथ, कुन्थुनाथ, शान्तिनाथ, अभिनन्दन, अरक-अरनाथ, मुनिसुव्रत धमनाथ, अजितनाथ, सभवनाथ, अनन्तनाथ, सुमतिनाथ, ये तीथपनि-तीर्थंकर हम सबका मगल करें ।

नाभेयाऽजित सभवाश्च्युतभवा श्रीसवरस्यात्मज-
स्तीर्थेश सुमति कुशेशयरुचि षष्ठ सुपार्श्वस्तथा ।
श्रीचन्द्रप्रभतीर्थकृच्च सुविधि श्री शीतल सौख्यद ।
श्रेयाम-प्रभु वासुपूज्य विमला कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ४

अथ—ऋषभ, अजित, भवरहित श्री सभव, सुमतिनाथ और छट्ठे पद्मप्रभ सुपार्श्व, श्रीचन्द्रप्रभ, तीर्थंकर सुविधि, सुखदायी शीतलनाथ, श्रेयासप्रभु, वासुपूज्य, विमल ये तीर्थंकर हम सबका मगल करे ।

इन्द्राग्न्याऽऽगुग-भूतय समकुला व्यक्त सुधर्मा तथा ।
पष्ठो मण्डित पुत्रको गणधरो मौर्यात्मज सप्तम ॥
श्रेयो दृष्टिरकम्पितो गुणमणि, र्धीरोऽचलभ्रातृक ।
नैतार्यो दशम प्रभासगणभृत्कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ५

[illegible]—[illegible]भूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डितपुत्र [illegible] मौर्यात्मज श्रेष्ठदृष्टि — धीअकम्पित गुणमणि-धीर

अचल भ्रातृक, मेतार्य और प्रभास ये ११ गणधर हम सब का मगल करें।

नाभेयादि-जिना प्रशस्त-वदना ख्याताश्चतुर्विंशति ।
श्रीमन्तो भरतेश्वर-प्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश ॥
ये विष्णु-प्रति विष्णु-लाङ्गलधरा सप्ताधिका विंशति ।
सर्व तेऽभयदास्त्रिपष्ठि-पुरुषा कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ६

अर्थ—ऋषभादि प्रशस्तवदन वाले चौबीस तीर्थंकर, श्रीमान् भरत आदि बारह चक्रवर्ती, विष्णु, प्रतिविष्णु और हलधर अर्थात् ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव यो सत्ताईस उत्तम पुरुष इस प्रकार अभय देनेवाले ये कुल तिरसठ शलाका पुरुष हमारा मगल करे।

पार्श्वो दुःख-विदारकस्त्रिभुवने पार्श्व रटन्ते सुरा ।
पार्श्वेणाभिहत कषाय-कटक पार्श्वाय तस्मै नम ।
पार्श्वात् प्राप्तसुख भुजङ्गयुगल पार्श्वस्य धर्य महत्,
पार्श्वे ध्यानरतो लभेच्छिव-पद हे पार्श्व ! वै पाहि न ॥ ७

अर्थ—भगवान पार्श्व तीनो लोक मे दुःख को दलन करने वाले है, देवता लोग पार्श्व की रटना करते है। पार्श्वनाथ ने कषाय की सेना को नष्ट किया, उस पार्श्व को नमस्कार है। पार्श्वनाथ से भुजग के जोडे ने सुख को प्राप्त किया, पार्श्वनाथ का धैर्य बडा है, पार्श्वनाथ मे ध्यान धारण करने वाला शिव पद को प्राप्त करता है। अत हे पार्श्व ? हम सब की आप रक्षा करें।

हिन्दी

अरिहन्त मगल सिद्ध प्रभु मगल,
साधु जीवन मगल जिनधर्म मंगल।
अरिहन्त उत्तम सिद्ध प्रभु उत्तम,
साधु जीवन उत्तम जिनधर्म उत्तम।
अरिहन्त शरण, सिद्ध प्रभु शरण,
साधु जीवन शरण, जिनधर्म शरण।
चार शरण दुःख हरण जगत मे,
और शरण नहीं कोई होगा।
जो भवि प्राणी करे आराधन,
उसका अजर अमर पद होगा।

हीर - हिमालय - हस कुन्द शरदभ्र निशाकर।
कीर्ति कान्ति विस्तार, सार गुणगण रत्नाकर।
दुःकृति- सतति धाम - काम - विद्वेषि - विदारण।
मान मतगज सिंह मोहतरु - दलन सुवारण।
श्री शांतिदेव जय जित मदन, वानारसिवन्दत चरण।
भव तापहारि हिमकर वदन, शान्तिदेव जयजितकरण।

जिसने राग-द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवो को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन हरिहर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी मे लीन रहो।

२

तीर्थ–स्नान

प्राकृत

ज नाण-दसण–चरित्त भावश्रो, तव्विवक्ख भावाश्रो ।
भव-भावश्रो य तारेइ, तेण त भावश्रो तित्थ ।। १

अर्थ—ज्ञान-दर्शन-चारित्र के द्वारा जो चतुर्विध सघ, अज्ञान-कुदर्शन और मिथ्याचार तथा ससार से पार करे उसे भाव तीर्थ कहते हैं ।

धम्मे हरए बभे सतितित्थे, अणाविले अत्त पसन्न लेसे ।
जहि सिणाश्रो विमलो विसुद्धो, महारिसी उत्तम ठाण पत्ते ।। २

अर्थ—मलिनता रहित और आत्मा की प्रसन्न-स्वच्छ लेश्यावाला धर्म ही मेरा जलाशय है, ब्रह्मचर्य शान्ति तीर्थ है, इसमें नहाकर मैं विमल, विशुद्ध और अच्छी तरह शीतल होकर कर्म-रज को दूर करता हू ।

सस्कृत

चित्तमतर्गत दुष्ट, तीर्थ स्नाने न शुद्ध्यति ।
शतशोपि जलैर्धौत, सुरा-भाड इवाऽशुचि ।। ३

हिन्दी

अरिहन्त मगल सिद्ध प्रभु मगल,
साधु जीवन मगल जिनधर्म मगल ।
अरिहन्त उत्तम सिद्ध प्रभु उत्तम,
साधु जीवन उत्तम जिनधर्म उत्तम ।
अरिहन्त शरण, सिद्ध प्रभु शरण,
साधु जीवन शरण, जिनधर्म शरण ।
च्यार शरण दुःख हरण जगत मे,
और शरण नहीं कोई होगा ।
जो भवि प्राणी करे आराधन,
उसका अजर अमर पद होगा ।

◎○

होर - हिमालय - हस कुन्द शरदभ्र निशाकर ।
कीर्ति कान्ति विस्तार, सार गुणगण रत्नाकर ।
दुष्कृति- सतति धाम - काम - विद्वेषि - विदारण ।
मान मतगज सिंह मोहतरु - दलन सुवारण ।
श्री शांतिदेव जय जित भवन, वानारसिवन्दत चरण ।
भव तापहारि हिमकर वदन, शान्तिदेव जयजितकरण ।

◎○

जिसने राग-द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया ।
सब जीवो को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध, वीर, जिन हरिहर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्तिभाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी मे लीन रहो ।

———

२

तीर्थ-स्नान

प्राकृत

ज नाण-दसण-चरित्त भावश्रो, तव्विवक्ख भावाश्रो ।
भव-भावश्रो य तारेइ, तेण त भावश्रो तित्थ ॥ १

अर्थ—ज्ञान-दर्शन-चारित्र के द्वारा जो चतुर्विध सघ, अज्ञान-कुदर्शन और मिथ्याचार तथा ससार से पार करे उसे भाव तीर्थ कहते हैं ।

धम्मे हरए बभे सतितित्थे, अणाविले अत्त पसन्न लेसे ।
जहिं सिणाश्रो विमलो विसुद्धो, महारिसी उत्तम ठाण पत्ते ॥ २

अर्थ—मलिनता रहित और आत्मा की प्रसन्न-स्वच्छ लेश्यावाला धर्म ही मेरा जलाशय है, ब्रह्मचर्य शान्ति तीर्थ है, इसमें नहाकर मैं विमल, विशुद्ध और अच्छी तरह शीतल होकर कर्म-रज को दूर करता हू ।

सस्कृत

चित्तमतर्गत दुष्ट, तीर्थ स्नाने न शुद्ध्यति ।
शतधापि जलैर्धौत, सुरा-भाड इवाऽशुचि ॥ ३

अर्थ—चित्त का आतरिक विकार तीर्थ स्नान मे शुद्ध नही होता। सौ वार भी जल से धोया गया मद्य का घडा अशुद्ध ही रहता है।

आत्मा नदी सयम तोयपूर्णा, सत्यावहा शीलतटा दयोर्मि ।
तत्राभिषेक कुरु पाडुपुत्र ! न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥ ४

अर्थ—सयम जल से भरी हुई आत्मा नदी है, उसमे सत्य का प्रवाह शील के दोनो किनारे और दया भाव उसकी ऊर्मिया है। हे पाडु पुत्र ! उसमे अभिषेक कर ! क्योकि अन्तरात्मा जल से शुद्ध नही होती।

अकल्कको निरारभो, लघ्वाहारो जितेन्द्रिय ।
विमुक्त सर्व-पापेभ्य स तीर्थ-फलमश्नुते ॥ ५

अर्थ—जो छल रहित, निरारभी, मिताहारी, जितेन्द्रिय एव सर्वथा पापमुक्त हैं, वह तीर्थ फल को प्राप्त करता है।

अक्रोधनश्च राजेन्द्र ! सत्य शीलो दृढव्रत ।
आत्मोपमश्च भूतेषु, स तीर्थ-फलमश्नुते ॥ ६

अर्थ—हे राजेन्द्र ! जो अक्रोधी, सत्यशील और दृढव्रती है, सव जीवो पर आत्मोपम दृष्टि से देखता है—वह तीर्थ फल को प्राप्त करता है।

राग द्वेष-मदोन्मत्ता, स्त्रीणा ये वशवर्तिन ।
न ते कालेन शुद्ध्यन्ति, स्नानात्तीर्थ-शतैरपि ॥ ७

अर्थ—जो जीव राग-द्वेष और मद मे उन्मत्त है, जो काम भोग के वशवर्ती है, वे सौ वार तीर्थ स्नान करके भी शुद्ध नही होते।

आप स्नान व्रतस्नान, मन्त्रस्नान तथैव च ।
आप स्नान गृहस्थस्य, व्रत-मन्त्रैस्तपस्विन ॥ ८

अर्थ—जल स्नान, व्रत स्नान, तथा मत्र स्नान, ऐसे तीन प्रकार के स्नान है। गृहस्थ के लिये जल स्नान और तपस्वी के लिये व्रत एव मत्र स्नान होता है।

हिन्दी

गगा नहाए हर्ष से पर, मन तो मैला ही रहा।
मन मैल गर धोया नहीं, गगा नहाए क्या हुआ ॥

हरी बेल की कडवी तुम्बडी, सब तीरथ कर आई।
घाट घाट को पानी भरियो, तबहू न गई कडवाई ॥

सत्य दया के तीर्थ मे, कर मनवा तू स्नान।
निर्मल चित हो जाएगा, बढे जगत मे मान ॥

मद वह बत्र है भँवर से जो उभर सकता नही।
हक ही जीने का नही, उसको जो मर सकता नही ॥

जहा दिल है वहा वो है, जहाँ वो है वहाँ सब कुछ।
मगर पहले भुकाये दिल, समझने की जरुरत है ॥

३

आत्मवाद

प्राकृत

जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।
जेण वियाणइ से आया, त पडुच्च पडिसखाए ।। १ (आचा०)

अर्थ—जो आत्मा है वह विज्ञाता है और जो विज्ञाता है, वह आत्मा है, जिससे जाना जाता है वह आत्मा है। जानने की सामर्थ्य के द्वारा ही आत्मा की प्रतीति है।

यदि ण य हवेदि जीओ, तो को वेदेदि सुक्ख दुक्खाणि।
इ दिय-विसया सव्वे, को वा जाणदि विसेसेण ।। २

अर्थ—अगर जीव न होता तो सुख दु ख का अनुभव कौन करता और सारे इन्द्रिय के विपयो को विशेप रूप से कौन जान पाता ?

नाण च दसण चेव, चरित्त' च तवोतहा।
वीरिय उवओगोय, एय जीवस्स लक्खण ।। ३ (उ० २७/११)

अर्थ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, वीर्य (शक्ति) तथा उपयोग ये जीव के लक्षण है।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा काम दुहा धेणू, अप्पा मे नदण वण ।। ४ उ० २०

अर्थ—मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी है और आत्मा ही कूट शाल्मली वृक्ष है । आत्मा ही कामधेनु तथा आत्मा ही नन्दन वन है ।

अप्पाकत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पामित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ ।। ५ उ० २०

अर्थ—आत्मा ही सुख दु ख को करने वाली और वही सुख दु ख का छेदन करने वाली है। सत्प्रवृत्ति मे लगी हुई आत्मा ही मित्र और कुमार्गगामी आत्मा ही शत्रु है।

अप्पा अरी होइ अणवट्ठियस्स, अप्पा जसो सीलमओनरस्स ।
अप्पा दुरप्पा अणवट्ठियस्स, अप्पा जियप्पा सरण गइअ । ६

अर्थ—अव्यवस्थित आत्मा शत्रु तुल्य है और शीलवान् नर की आत्मा यशरूप है । अव्यवस्थित आत्मा दुरात्मा है और जयी आत्मा शरण एव गति है ।

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पाहि खलु दुद्दमो ।
अप्पा दतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य । ७ उत्त० १

अर्थ—आत्मा का ही दमन करना चाहिए । वस्तुत यह अत्यन्त दुर्दम्य है। आत्म दमन करने वाला इस लोक तथा परलोक मे सुखी रहता है ।

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाण, जइत्ता सुहमेहए । ८ उत्त० ९/३५

अर्थ—अपनी आत्मा से ही युद्ध करो। बाहरी शत्रुओ के साथ युद्ध से क्या लाभ ? आत्मा को आत्मा से जीतने वाला ही वस्तुत पूर्ण सुखी होता है।

जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जए जिरो।
एग जिरोज्ज अप्पाण, एस से परमो जओ ॥ उ० ९/३५

अर्थ—जो भयकर युद्ध मे दश लाख योद्धाओ को जीतता है, वह यदि मात्र अपनी आत्मा को जीतले तो यह उसकी बडी जीत है।

पचिन्दियाणि कोह, माण मायं तहेव लोह च।
दुज्जयचेव अप्पाण, सव्वमप्पे जिए जय ॥ १० उ० ९/३६

अर्थ—पाच इ द्रिया, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सबसे अधिक दुर्जय अपने आत्मा-मन को जीतना चाहिए। एक आत्म-जय से ही सब कुछ जीत लिया जाता है।

पुरिसा ! अत्ताणमेव अभि-नि-गिज्भ।
एव दुक्खा पमोक्खसि ॥ ११ आचा १/३/३

अर्थ—साधक ! तुम पहले अपनी आत्मा का ही निगह करो। ऐसा करके समस्त दु खो से छुटकारा पा सकते हो।

एगो मे सासओ अप्पा, नाण-दसण-सजुओ।
सेसा मे वाहिरा भावा, सव्वे सजोग-लक्खरा ॥ १२ ॥

अर्थ—ज्ञान, दर्शन और चारित्र से परिपूर्ण मेरी आत्मा ही शाश्वत है, सत्य सनातन है। आत्मा के सिवा अन्य सब पदार्थ सयोग-मात्र से मिले है।

सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविश्रो ।
ससारो श्रण्णवो वुत्तो, ज तरन्ति महेसिणो ॥ १३ उ० ॥

श्रर्थ—शरीर को नाव कहा है, आत्मा नाविक कहलाता है, ससार को समुद्र बतलाया है। इस ससार समुद्र को महर्षि जन पार करते है।

न त श्ररी कठ छेत्ता करेइ ।
ज से करे श्रप्पणिया दुरप्पा ॥ १४ उ० ॥

श्रथ—सिर काटने वाला शत्रु भी उतना श्रपकार नही करता, जितना कि दुराचरण मे श्रासक्त श्रात्मा करती है।

सस्कृत

तिलेषु तैल दधिनीवसर्पि-राप स्रोतस्स्वरणीषुचाग्नि ।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ, सत्येनैन तपसायोऽनुपश्यति ॥ १

श्रर्थ—जैसे तिलो मे तेल, दही मे घृत, झरनो मे जल श्रौर श्ररणि मे श्रग्नि है, वैसे इस देह मे यह श्रात्मा है। सत्य श्रौर तपस्या से ही उसका साक्षात्कार सभव है।

घटावभासको भानुर्घट-नाशे न नश्यति ।
देहावभासक साक्षी, देह-नाशे न नश्यति॥ २ ॥

श्रथ—जैसे घडे का प्रकाशक सूर्य घट के नाश होने पर नष्ट नही होता। वैसे ही इस देह मे यह श्रात्मा साक्षी रूप है, देह के नाश से श्रात्मा का नाश नही होता।

य कर्ता कर्म भेदाना, भोक्ता कर्मफलस्य च ।
ससर्ता परिनिर्वाता, सह्यात्मा नान्यलक्षण ॥ ३ ॥

अर्थ—जो शुभाशुभ कर्म का कर्ता और कर्म फल का भोक्ता है। कर्म के कारण ससार मे परिभ्रमण करता और कर्म क्षय कर निर्वाण प्राप्त करता, वही आत्मा है।

अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्य सर्वगतोऽक्रिय ।
अकर्ता निर्गुण सूक्ष्म, आत्मा कापिल-दर्शने ॥ ४ ॥

अर्थ—कापिल दर्शन मे आत्मा का स्वरूप अमूर्त, चेतन भोक्ता, नित्य, सर्वगत, अक्रिय, अकर्ता, निर्गुण और सूक्ष्म माना गया है।

- अच्छेद्योऽयमदाह्योय-मक्लेद्योऽशोष्य एवच ।
नित्य- सर्वगत स्थाणुरचलोऽय सनातन ॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥ ५ ॥ गीता

अर्थ—यह आत्मा शस्त्र से छिन्न नही होती, आग से नही जलती और न पानी से भीगती तथा न पवन से ही सूख पाती है। यह नित्य है, सभी जगह जाने वाली, खूट की तरह स्थिर एव सनातन है। यह अव्यक्त तथा चिन्तन से परे है। यही अविकारी भी कहाती है।

उद्धरेदात्मनात्मान, नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु-रात्मैव रिपुरात्मन ॥ ६ ॥

अर्थ—आत्मा से आत्मा को उठाओ, उसे गिरने नही दो। आत्मा ही आत्मा का बन्धु एव आत्मा ही आत्मा का शत्रु भी है।

स्वय कर्म करोत्यात्मा, स्वय तत्फलमश्नुते ।
स्वय भ्रमति ससारे, स्वय तस्माद् विमुच्यते ॥ ७ ॥

अर्थ—जीव स्वय कर्म करता और स्वय ही उसका फल भी भोगता है यह स्वय ससार मे भ्रमण करता और आप ही उससे मुक्त भी होता है ।

सत्येन लभ्यस्तपसा, ह्येष आत्मा, सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्
अन्त शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो य पश्यन्ति यतय क्षीणदोषा ॥ ८
(मुण्डकोपनिषद)

अर्थ—अन्त करण मे विराजमान ज्योतिर्मय यह शुभ्र आत्मा निश्चय ही सत्य भाषण, तप, ब्रह्मचर्य और यथार्थ ज्ञान से सदा प्राप्त होता है । और सकल-दोष रहित साधक ही उसे देख पाते हैं ।

हिन्दी

तेरा साईं तुझ मे, ज्यों पुहपन मे वास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर फिर ढूढे घास ॥

पावस रूपी साइया सब घट रहा समाय ।
चित चकमक लागे नहीं, ताते बुझि बुझि जाय ॥ 'कबीर'

सब घट माहि रमि रहा, बिरला बूझई कोइ ।
सोई बूझत राम को, राम सनेही होइ ।

कोई दौड़े द्वारिका, कोई काशी जाहिं ।
कोई मथुरा को चले, साहिब घट ही माहि । "दादू"

सिद्धा जैसो जीव है, जीव सोही सिद्ध होय ।
कर्म मेल का अन्तरा, बूझे विरला कोय ।

४

श्रद्धा

प्राकृत

धम्मसद्धाए ण भन्ते ! जीवे कि जणयइ ?
धम्मसद्धाए ण सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ ।
अगारधम्म च ण चयइ अणगारे ण जीवे सारीरमाणसाण
दुक्खाण छेयणभेयण-सजोगाईण वोच्छेय करेइ अव्वाबाह
च सुह निव्वत्तेइ ।। १ उ० २९/३

अर्थ—हे भगवन् ! धर्म श्रद्धा से जीव क्या फल प्राप्त करता है ? धर्मश्रद्धा से वैषयिक सुखो मे रति करने वाला विरक्त हो जाता है । गृहस्थ-जीवन की सुख-सुविधा को छोडता और अनगार-मुनि होकर छेदन-भेदन, सयोग-वियोग आदि शारीरिक और मानसिक दुखो का अन्त कर लेता तथा निराबाध सुख को प्राप्त करता है ।

आहच्च सवण लद्धु, सद्धा परम दुल्लहा,
सोच्चा नेआउय, मग्ग बहवे परिभस्सइ । २ उ० ३/९

अर्थ—शास्त्र श्रवण का लाभ प्राप्त होने पर भी उसमे श्रद्धा होना परम दुर्लभ है। कारण, बहुत से लोग मोक्ष मार्ग को सुनकर भी उससे भ्रष्ट हो जाते हैं।

संस्कृत

श्रद्धावाल्लभते ज्ञान, तत्पर सयतेन्द्रिय ।
ज्ञान लब्ध्वा परा शाति, मचिरेणाधिगच्छति ॥ २ गीता ४/३६

अर्थ—स्वरूप प्राप्ति के लिये तत्पर जितेन्द्रिय श्रद्धालु ज्ञान को प्राप्त करते हैं और ज्ञान लाभकर शीघ्र ही परम शान्ति को पालेते हैं।

सम्यक्त्व सहिता एव, शुद्धादानादिका क्रिया ।
तासा मोक्ष फल प्रोक्त, यदस्य सहचारिता ॥ ४

अर्थ—श्रद्धापूर्वक की गई दानादिक क्रियाए ही शुद्ध मानी जाती है। उन क्रियाओ का फल मोक्ष है, जो कि इसके सहचारी भाव हैं।

पिधान दुर्गति द्वारे, निधान सर्वसम्पद ।
विधान मोक्ष-सौख्याना, पुण्यै सम्यक्त्वमाप्नुयात् ॥ ५

अर्थ—दुर्गति के दरवाजे को बन्द करने वाला, समस्त सम्पत्तियो का खजाना, मोक्ष और सुख का विधायक यह सम्यक्त्व-श्रद्धा पुण्य से ही प्राप्त होता है।

नरत्वेपि पशूयन्ते, मिथ्यात्व-ग्रस्त चेतस ।
पशुत्वेऽपि नरायन्ते, सम्यक्त्व-व्यक्त-चेतना ॥ ६

अर्थ—मानव होकर भी कोई अगर मिथ्यात्वग्रस्त मन वाला हो तो वह पशुवत् आचरण करता है और पशुता मे भी श्रद्धाशील हृदय होकर नर की तरह सम्यग् व्यवहारशील बन जाता है।

विनैकक शून्य गणा वृथा-यथा, विनार्क-तेजो नयनेवृथा यथा ।
विना सुवृष्टि च कृषिर्वृथा यथा, विना सुदृष्टि विपुल तपस्तथा ।।७

अर्थ—जैसे एकादि सख्या के विना शून्य का समूह व्यर्थ है और सूर्य के तेज के विना दोनो आँखें व्यर्थ हैं तथा अच्छी वर्षा के विना कृषि व्यर्थ है, वैसे ही विना श्रद्धा के विशाल तप व्यर्थ है ।

सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य, ध्रुव निर्वाण-सगम ।
मिथ्या दृशोऽस्य जीवस्य, ससारे भ्रमण सदा ।। ८

अर्थ—जो श्रद्धा से युक्त हैं, उन्हें निश्चय मोक्ष मिलता है और इस मिथ्यादृष्टि जीव का ससार मे सर्वदा भ्रमण होता रहता है ।

हिन्दी

श्रद्धा है सारवार, श्रद्धा ही से खेवो पार ।
श्रद्धा बिन जीव ख्वार, निश्चय कर मानिये ।।

श्रद्धा धन है जगत मे, श्रद्धा से हो ज्ञान ।
बिन श्रद्धा की साधना, सफल कभी नहीं मान ।।

जहा श्रद्धा नही, वहा धर्म नही ।
—गाधी

श्रद्धा और चरित्र से युक्त मनुष्य जिस देश मे जाता है, वही पूजा जाता है । —बुद्ध

५

कषाय-परिणाम

प्राकृत

कसायपच्चक्खाणेण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ।
कसायपच्चक्खाणेण वीयरागभाव जणयइ, वीयरागभावपडिवन्ने
वि य ण जीवे समसुहदुक्खे भवइ ।। १

अर्थ—हे भगवन् कषाय-क्रोध, मान, माया और लोभ के प्रत्याख्यान से जीव क्या फल प्राप्त करता है ?

कषाय के त्याग से जीव वीतराग भाव को प्राप्त होता है, और वीतराग भाव को प्राप्त कर जीव सुख-दुख मे सम भाव प्राप्त करता है ।

जइ उवसत कसाओ, लहइ अणत पुणोवि पडिवाय ।
नहु भे वीससियव्व थेवे वि कसाय सेसम्मि ।। २

अर्थ—कषाय शेष रहने पर अनन्तपुण्य वाला भी प्रत्यवाय प्राप्त करता है, अत थोडा सा भी कषाय शेष रहे तो उसकी उपेक्षा नही करनी चाहिए ।

अहे वयइ कोहेण, माणेण अहमा गई ।
माया गइ-पडिग्घाओ, लोभाओ दुहओ भय ॥ ३

अर्थ—क्रोध से आत्मा का अध पात होजाता है। मान से अधमगति प्राप्त होनी है। माया से सद्गति का मार्ग अवरुद्ध होता है। लोभ से दोनो लोक मे भय-कष्ट होता है।

अणथोवं वणथोव, अग्गीथोव कसायथोव च ।
ण हु भे वीससियव्व, थोव पि हु ते बहु होइ ॥ ४

अर्थ—ऋण, व्रण-घाव, अग्नि और कषाय—इनका थोडा सा अ श है, अत उसकी उपेक्षा नही करनी चाहिये। ये अल्प भी समय पर बहुत हो जाते है।

कोह माण च मायच, लोभच पाव वड्ढण ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छन्तो हियमप्पणो ॥ दश० ५

अर्थ—जो मनुष्य अपना हित चाहता है, उसे पापवर्द्धक, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार दोषो को सदा के लिए छोड देना चाहिये।

सह-सल्लो जइ विकट्ठुग्ग, घोर-वीर तव चरे ।
दिव्व वास सहस्स, ततो वि त तम्स निप्फल ॥ ६

अर्थ—छल-कपट वाला व्यक्ति चाहे देवताओ के हजार वर्ष तक भी घोर उग्रतप करे, परन्तु अन्तर मे शल्य होने से, उसका वह सारा तप निष्फल है।

कोहो य माणोय अरिणग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइ पुणब्भवस्स ।। ७

अर्थ—अनिगृहीत क्रोध और मान तथा बढते हुए माया और लोभ ये चारो ही कषाय पुनर्जन्मरूपी वृक्ष की जडो को सीचते रहते है।

कोहो पीइ पणासेइ, माणो विणय नासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो ।।

अर्थ—क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का का नाश करता है, माया मित्र का नाश करती है और लोभ सभी सदगुणो का नाश करता है।

संस्कृत

दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो, दुष्टेन लोभाख्य महोरगेण ।
ग्रस्तोऽभिमानाजगरेण माया, जालेन बद्धोऽस्मि कथ भजे त्वाम् ।।८

अर्थ—प्रभो ! मै क्रोध की आग से जला हुआ हूं, दुष्ट लोभरूप सर्प ने डस रक्खा है। अभिमान के अजगर से निगला गया और माया के जाल से बधा हुआ तुम्हारी भक्ति कैसे करू ?

कषाय वशग प्राणी, हन्ता स्वस्य भवे-भवे ।
ससार वर्धनोऽन्येषा भवेद्वा वधको न वा ।। ६ हरि पु ६१/१०२

अर्थ—कपायाधीन प्राणी से दूसरो की हत्या हो या न भी हो, किन्तु वह अपना वध तो भव-भव मे करता है। अत वह ससार की वृद्धि करने वाला है।

हिन्दी

क्रोध ने नरक जाय, बाघ सिंघ सर्प थाय।
क्रोधी दुर्गत जाय, भमे कोडा-कोड रे॥
क्रोध ही ते मत जाय, क्रोध ही ते विष खाय।
क्रोध बहु दुखदाय, जीव आणे खोड रे॥
क्रोध की उपनी जाल, जोवो तम्मे तत्काल,
करी रातो आल माल, पीछा पत छोड रे।
भणे 'मुनि बालचद' सुण हो भविक वृंद,
क्रोध ते अनरथ मूल, क्रोध दूर छोड रे॥

—मुनि बालचद

उर्दू

गुस्से से बढके कौन है इन्सान का दुश्मन।
है शान का, रुतबे का यह ईमान का दुश्मन॥ हाली॥
दिखा न जोशोखरोश, इतना जोर पर चढकर।
गए जहान मे दरिया बहुत उतर चढकर॥
छोडा नहीं खुदी को, दौडे खुदा के पीछे।
आसा को छोड बन्दे, मुश्किल को ढूंढते हैं॥ नाशाद॥
मिट गई सारी खुदी, जाती रही दिल से दुई।
सबमे उसको जब से देखा, तफ़का जाता रहा॥ नासिख।
खोकर खुदी को पाया, खोए हुए को हमने।
सब कुछ अयां[1] हुआ है, जो था निहां[2] नजर से॥ सौदा॥
हजार सजदे करे, रात-रात भर जाहिद[3]।
जो दिल ही साफ न हो क्या जबीं[4] मे नूर[5] आए॥ जिगर॥

---

१ प्रकट, २, ओझल, ३ उपासक ४ मस्तक, ५ प्रकाश।

६

बाल-शिक्षा

प्राकृत

वसे गुरुकुले निच्च. जोगव उवहाणव ।
पियकरे पियवाई, से सिक्ख लद्धमरिहुई ॥ १ उ० ११/१४

अर्थ—जो सदा गुरुकुल मे अर्थात् गुरु सेवा मे वास करता और समाधि युक्त रहता है, जो उपधान तप करता, सर्व प्रिय आचरण करता और प्रिय बोलता है, वह शिक्षा प्राप्त करने योग्य है ।

सस्कृत

सुखार्थी चेत्यजेद्विद्या, विद्यार्थी चेत् सुख त्यजेत् ।
सुखार्थिन' कुतो विद्या, विद्यार्थिनाञ्च कुत सुखम् ॥ २

अर्थ—सुख चाहे तो विद्या छोड ग्रौर विद्या चाहे तो सुख को छोडदे । सुख चाहने वालो को विद्या कहा ? और विद्यार्थी को सुखकहा ?

लालयेत् पचवर्षाणि, दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्तेतु षोडशे वर्षे, पुत्र मित्रवदाचरेत् ॥ ३

अर्थ—पाच वर्ष तक पुत्र का लालन करे, दश वर्ष तक ताडना करे और सोलह वर्ष का होने पर पुत्र के साथ मित्र-सा व्यवहार करे ।

माता शत्रु पिता वैरि, याभ्या बालो न पाठित ।
न शोभते सभा मध्ये–हसमध्ये बको यथा ।। ४

अर्थ—जो बालक को शिक्षण नही देते, वे माता शत्रु एव पिता वैरी के समान हैं । सभा मे वह बच्चा हसो के बीच बगुले के समान शोभा नही पाता ।

वरमेको गुणीपुत्रो, न च मूर्ख शतान्यपि ।
एकश्चन्द्र तमोहन्ति, न च तारागणोऽपि च ।। ५

अर्थ—एक गुणीपुत्र श्रेष्ठ है सौ मुर्ख पुत्र नही । एक ही चन्द्र अन्धकार को-नाश करता है किन्तु ताराओ का विशाल समुदाय भी नही ।

हिन्दी

लडका रखिये हटक मे, नहीं चाढिये शीस ।
नित प्रति लाड लडावता, बिगडे विसवा वीस ।।

बिगडे विसवा वीस, हाथ हुनर नहीं आवे ।
बैठ सभा के बीच, ऊच पद कबहु न पावे ।।

कहे गिरधर कविराय, सुनो हो उसके घर का ।
कोउ उपाय करो, तभी नहीं सुधरे लडका ।। गिरधर ।

ಅಅ

कूटी थी जब कूटी थी, काची ने तब कूटी थी ।
अब जो कूटे मोय, तो खबर बताऊ तोय ।।

७

स्वाध्याय

प्राकृत

सज्झाएण भंते ! जीवे किं जणयइ ?

सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्मं खवेइ ॥ १ उ० २९/१८

अर्थ—हे भगवन् ! स्वाध्याय से जीव क्या प्राप्त करता है ? उत्तर-स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरणीय कर्म को क्षीण करता है ।

नाणं मेगग्ग चित्तो य, ठिओ य ठावइ परम् ।

सुआणि य अहिज्जित्ता, रओ सुय-समाहिए ॥ २ द० ९/४

अर्थ—श्रुत समाधि मे रमण करने वाला, शास्त्र को पढकर क्या लाभ प्राप्त करता ? (१) तत्व-अतत्व का ज्ञान होता, (२) चित्त की चचलता दूर होती, (३) आत्मा में स्थिरता प्राप्त होती-स्वयं स्थिर होकर अन्य को भी स्थिर करता, यह श्रुताराधन-स्वाध्याय का फल है ।

परतत्ती णिरवेक्खो, दुट्ठ वियप्पाण णासण समत्थो ।
तच्च विणिच्छय हेदू, सज्झाओ ज्झाण सिद्धियरो ।। ३

अर्थ—स्वाध्याय दूसरो की निन्दा से हटाने वाला, बुरे विकल्पो का नाश करने वाला, तत्वार्थ के विनिश्चय का कारण और ध्यान की सिद्धि मे सहायक है ।

श्लोको वर परम तत्व-पथ प्रकाशी,
न ग्रन्थ कोटिपठन जनरजनाय ।
सजीवनीति वरमौषधमेकमेव,
व्यर्थ श्रमस्य जननो न तु मूलभार ।। ४

अर्थ—परम तत्व को प्रकाशित करने वाला एक श्लोक अच्छा पर जनरजन के लिये क्रोडो ग्र थ का पढना अच्छा नही । सजीवनी एक भी औषध अच्छी किन्तु व्यर्थ भार देने वाला मूलो का ढेर अच्छा नही ।

वाचना पृच्छनाम्नायस्तथा धर्मस्य देशना ।
अनुप्रेक्षा च निर्दिष्ट , स्वाध्याय पञ्चधा जिनै । ५

जैनधर्मामृत १२/१५

अर्थ—शास्त्र के अध्ययन को स्वाध्याय कहते हैं, जो मूल और अर्थ की वाचना, तत्व-निर्णय के लिये पृच्छा, शुद्ध उच्चारण के साथ पाठ का परावर्तन, दूसरो को समझाने के लिये धर्मकथा का उपदेश करना, और चिन्तन-मनन पूर्वक अनुप्रेक्षा करना रूप पाच प्रकार के है ।

हिन्दी

स्वाध्याय हृदय का दीपक है, अज्ञान अधेरा दूर करे।
है मित्र सदा का यह साथी, सब जन की दुर्मत दूर करे॥

स्वाध्याय बिना घर सूना है, मन सूना है सद्ज्ञान बिना।
जीवन मे ज्ञान प्रकाश रहे, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो॥

ज्ञानी को दुख नहीं होता, ज्ञानी धीरज नहीं खोता है।
सत्सग से ज्ञान भडार भरो, स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो॥

स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्य ।
" उपनिषद् "

स्वाध्याय से प्रमाद नही करना चाहिए।

८

गुरु

प्राकृत

सो हु गुरू जो णाणी, आरंभ परिग्गहा विरओ।
पंचिंदिय संवरणो, तह नवविह बंभचेर गुत्तिधरो॥ १

जैन तत्व प्रकाश–१२१

अर्थ—वही गुरु है जो ज्ञानी और आरंभ एवं परिग्रह से विरत है। जो पंचेन्द्रिय को संयत रखने वाले तथा नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य की गुप्ति के धारक हैं।

संस्कृत

अवद्यमुक्ते पथि य प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्य जनश्च निस्पृह।
स सेवितव्य स्व-हितैषिणो गुरु स्वय तरस्तारयितु क्षम परम्॥ २

अर्थ—जो निर्दोष मार्ग पर चलते और बिना किसी स्वार्थ के अन्य प्राणी को प्रेरित करते हैं। आत्म हितैषी को जो स्वयं तैरते हुए दूसरे को तारने मे समर्थ है वैसे गुरु की सेवा करनी चाहिये।

विदलयति कुबोध बोधयति त्यागमर्थम्,
सुगति कुगति मार्गौ पुण्य-पापे व्यनक्ति।
अवगमयति कृत्याकृत्य भेद गुरुर्यो,
भव जल-निधि-पोतस्त्त विना नास्तिकश्चित् ॥

अर्थ—जो कुबोध को दूर कर सिद्धान्त का सही ज्ञान कराते। सुगति और कुगति के मार्ग व पुण्य-पाप का विवेक कराते। कर्तव्या-कर्तव्य का सम्यग् ज्ञान कराते, वैसे गुरु के सिवा भव-सागर पार कराने वाला जहाज और कौन हो सकता है ?

हिन्दी

विषयों की आशा नही जिनके, साम्यभाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन मे जो, निशदिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे त्यागी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं॥

गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेले दाव।
दोनों डूबे बापडा, बैठ पत्थर की नाव॥

लोभी गुरु तारे नहीं, तिरे सो तारण हार।
जो तू तिरणो चाहे, तो निर्लोभी गुरु धार॥

बिल्लो गुरु बगुला किया, दशा ऊजली देख।
कहो कालू कैसे तिरे, दोनो की गति एक॥

८

गुरु

प्राकृत

सो हु गुरू जो णाणी, आरभ परिग्गहा विरओ ।
पचिंदिय सवरणो, तह नवविह बभचेर गुत्तिधरो ।। १

जैन तत्व प्रकाश-१२१

अर्थ—वही गुरु है जो ज्ञानी और आरभ एव परिग्रह से विरत है । जो पचेन्द्रिय को सयत रखने वाले तथा नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य की गुप्ति के धारक हैं ।

सस्कृत

अवद्यमुक्ते पथि य प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्य जनञ्च निस्पृह ।
स सेवितव्य स्व-हितैषिणो गुरु स्वय तरस्तारयितु क्षम परम् ।। २

अर्थ—जो निर्दोष मार्ग पर चलते और बिना किसी स्वार्थ के अन्य प्राणी को प्रेरित करते हैं । आत्म हितैषी को जो स्वय तैरते हुए दूसरे को तारने मे समर्थ हैं वैसे गुरु की सेवा करनी चाहिये ।

विदलयति कुबोध बोधयति त्यागमर्थम्,
सुगति कुगति मार्गौ पुण्य-पापे व्यनक्ति।
अवगमयति कृत्याकृत्य भेद गुरुर्यो,
भव जल-निधि-पोतस्त विना नास्तिकश्चित् ॥

अर्थ—जो कुबोध को दूर कर सिद्धान्त का सही ज्ञान कराते। सुगति और कुगति के मार्ग व पुण्य-पाप का विवेक कराते। कर्तव्या-कर्तव्य का सम्यग् ज्ञान कराते, वैसे गुरु के सिवा भव-सागर पार कराने वाला जहाज और कौन हो सकता है ?

हिन्दी

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्यभाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन मे जो, निशदिन तत्पर रहते हैं ॥

स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे त्यागी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ॥

गुरु लोभी चेला लालची, दोनो खेले दाव।
दोनों डूबे बापडा, बैठ पत्थर की नाव ॥

लोभी गुरु तारे नहीं, तिरे सो तारण हार।
जो तू तिरणो चाहे, तो निर्लोभी गुरु धार ॥

बिल्ली गुरु बगुला किया, दशा ऊजली देख।
कहो कालू कैसे तिरे, दोनों की गति एक ॥

भटक मुवा भेदू विना, कौन बतावे धाम।
चलता चलता युग गयो, पाव कोस पर गाम॥

परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुख धाम।
जेणे आप्युं भान निज, तेने करू प्रणाम॥

कबिरा ते नर अंध है, गुरु को मानत और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठेनहीं ठौर॥

—कबीर

❀

६

ज्ञान की महिमा

प्राकृत

ना सपन्नयाए ण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
नाणसपन्नयाए ण जीवे सव्वभावाहिगम जणयइ।
नाणसपन्ने ण जीवे चाउरन्ते ससारकन्तारे न विणस्सइ।
जहा सूई ससुत्ता पडिया वि न विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते ससारे न विणस्सइ ॥ उ० २९/५९

अर्थ—हे भगवन् ! ज्ञान सम्पन्नता–श्रुत ज्ञान की सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उत्तर—ज्ञान सम्पन्नता से जीव सब पदार्थों को जान लेता है। ज्ञान सम्पन्न जीव चार गति-रूप, चार अन्तो वाली ससार अटवी मे विनष्ट नही होता। जिस प्रकार ससूत्र (धागे मे पिरोई हुई) सुई गिरने पर भी गुम नही होती, उसी प्रकार ससूत्र (श्रुत सहित) जीव ससार मे रहने पर भी विनष्ट नही होता।

संस्कृत

ज्ञानपूर्वमनुष्ठान, नि शेष यस्य योगिन
न तस्य बधमायाति, कर्म कस्मिन्नपि क्षणे ॥
जैन धर्मामृत ३/२१

अर्थ—जिस योगी का समस्त अनुष्ठान (धार्मिक प्रवृत्ति) ज्ञान पूर्वक होता है उसको कभी भी कर्म वन्ध नही होता।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाद् ज्ञानयज्ञ पर तप।
सर्व कर्माखिल पार्थ, ज्ञाने परिसमाप्यते ॥
—गीता

अर्थ—हे परतप! द्रव्यमय यज्ञो से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है। हेपार्थ! समस्त कम ज्ञान के आने पर नष्ट हो जाते हैं।

यथा यथा ज्ञान-बलेन जीवो, जानाति तत्व जिननाथ दृष्टम्।
तथा तथा धर्ममति प्रशस्ता, प्रजायते पाप-विनाश शक्ता ॥ ४

अर्थ—जैसे जैसे जीव ज्ञान वल से जिननाथ द्वारा प्रदर्शित तत्व को जानता है, वैसे वैसे उसमे उत्तम धर्ममति उत्पन्न होती है जो कि पाप के नाश करने मे सवल होती है।

अज्ञान तमसाच्छन्नो, मूढान्त करणो नर ।
न जानाति कुत कोऽहं, क्वाहं गन्ता किमात्मक ॥

अर्थ—अज्ञानान्धकार से ढका और मूढ अन्त करण वाला नर नही जानता कि मैं कहा से आया, कौन हूँ और कहाँ जाऊँगा? तथा मेराआत्म स्वरूप क्या है?

तमो धुनीते कुरुते प्रकाश शमविधत्ते विनिहन्ति कोपम् ।
तनोति धर्मं विधुनोति पाप, ज्ञान न कि कुरुते नराणाम् ॥ ४

अर्थ—ज्ञान हृदय के अन्धकार को नाश कर दिव्य प्रकाश फैलाता है, शान्ति स्थापित करता एव क्रोध का नाश करता है, धर्म का विस्तार करता तथा पापको नष्ट करना है, इस तरह ज्ञान मनुष्यो का क्या नही करता ? याने सब कुछ करता है ।

शक्यो विजेतु न मन करीन्द्रो, गन्तु प्रवृत्त प्रविहाय मार्गम् ।
ज्ञानाङ्कुशेनात्र विना मनुष्यै, विनाङकुश मत्तमहा करीव । ५

अर्थ—इस ससार मे सुमार्ग छोड कर चलने वाले मन रूप गजेन्द्र को मनुष्य ज्ञानाकुश से ही जीतने मे समर्थ हो सकता है, जैसे मत्त गजेन्द्र अ कुश के विना वश मे नही होता वैसे ज्ञान के विना मन मातग भी वश नही आता ।

क्षेत्रे प्रकाश नियत करोति, रविर्दिनेऽस्त पुनरेव रात्रौ ।
ज्ञान त्रिलोके सकले प्रकाश, करोति नाच्छादनम स्त किञ्चित् ॥ ६

अर्थ—सूर्य दिन मे नियत रूप से पृथ्वी पर प्रकाश करता है और उसके डूबने पर रात मे पुन अन्धकाररहता है । किन्तु ज्ञान समस्त तीनो लोको मे प्रकाश करता है, उसको ढकने वाला कोई नही है ।

धर्मार्थकाम व्यवहार शून्यो-विनष्ट-नि शेष-विचार बुद्धि ।
रात्रि दिव भक्षण सक्त चित्तो ज्ञाने न हीन पशुरेवशुद्ध ।

अर्थ—ज्ञानहीन मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और व्यवहार से शून्य एव समस्त सद् विचार से रहित वुद्धि वाला दिन रात भोजन मे तल्लीन केवल शुद्ध पशु मात्र ही कहा गया है ।

शौच क्षमा सत्य-तपो-दमाद्या गुणा समस्ता क्षणतश्चलन्ति।
ज्ञानेन हीनस्य नरस्य लोके, वात्याहता वातरवोऽपि मूलात् ।।८

अर्थ—पवित्रता, क्षमा, सत्य, तप और इन्द्रिय निगह आदि समस्त सद्गुण ज्ञान हीन नर के पास से क्षणभर मे चले जाते है, जैसे आंधी से आहृत वृक्ष जड से गिर जाते हैं।

परोपदेश स्वहितोपकार ज्ञानेन देही वितनोतिलोके।
जहाति दोष श्रयते गुणञ्च ज्ञान जनैस्तेन समर्चनीयम् ।। ६

अर्थ—ज्ञान से मनुष्य ससार मे स्वपर का उपकार करता और सदुपदेश फैलाता है। ज्ञान से ही दोष त्याग कर गुण को ग्रहण करता अत लोगो को भली भाति ज्ञान का आराधन करना चाहिए।

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्व, क्षमा-दया-सर्वजन प्रियत्वम्।
निर्लोभदान भयशोक-हान, ज्ञानस्य चिन्ह दश लक्षणाच। १०

अर्थ—क्रोध नही करना, वैराग्य, जितेन्द्रियता, क्षमा, दया, सर्व जन-प्रियता, निर्लोभिता, दान करना भय और शोक रहित होना ज्ञान के ये दश लक्षण हैं।

यदज्ञ जीवो विधुनोति कर्म, तपोभिरुग्रैर्भव कोटि लक्षै।
ज्ञानी तु चैक क्षणतो हिनस्ति, तदत्रकर्मेति जिनावदन्ति। ११

अर्थ—लाखो करोडो भव के उग्र तप मे अज्ञ जीव जिस कर्म का नाश करते हैं, ज्ञानी उस कर्मदल को एक क्षण मे नष्ट कर देता है, ऐसा जिनेन्द्र का कथन है।

हिन्दी

ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरमाई निर्दोष ।
एता कबहू न छोडिये, श्रद्धा शील संतोष ॥

समझ सार संसार मे समझू टाले दोष ।
समझ समझ कर जीवडा, गया अनन्ता मोक्ष ॥

समझू सके पाप से, अणसमझू हरसन्त ।
वे लूखा वे चीकणा, इण विध कर्म बन्धन्त ॥

●●

उर्दू

अक्ल से ही इन्सान इन्सान है ।
अक्ल न हो इन्सान हैवान है ॥ 'हाली'

विना सोचे विना समझे "वशर" जो काम करते हैं ।
येह अपने हाथों से ही आखिर बुरा अंजाम करते हैं ।

न हिन्दु है बुरा और न मुसलमान है बुरा ।
बुराई हैं जिस में वोह इन्सान है बुरा ॥ "वशर"

●●

१०

सेवा

<u>प्राकृत</u>

वेयावच्चेण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वेयावच्चेण तित्थयर नाम गोत्त कम्म निबधइ। १ उ० २९/४३

अर्थ—हे भगवन् ! वैयावृत्य–सेवा से जीव क्या फल प्राप्त करता है ?
वैयावृत्य–से जीव तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन करता है।

जो गिलाण पडियरइ, सो मम पडियरइ।

जो मम पडियरइ, सो गिलाण पडियरइ॥ ओघ नि० टीका

जो गिलाण पडियरइ, सो मम णाणेण दसणेण चरित्तेण–
पडिवज्जइ।२

अर्थ—जो ग्लान–आतुर की सेवा करता है, वह मुझे सेवता है। और
जो मुझे सेवता है वह ग्लान को सेवता है। जो ग्लान को सेवता
है वह ज्ञान, दर्शन और चारित्र से मुझे स्वीकार करता है।

वेयावच्च नियथ करेह, उत्तर गुणे धरित्ताण। ३

सव्व किल पडिवाई वेयावच्च अपडिवाई। ओघ०टीका ५३२-३३

अर्थ—उत्तम-गुण धारण करने वालो की नियत सेवा करो और सब गुण मन से निकल जाते, पर सेवा गुण कभी भुलाया नहीं जाता।

सस्कृत

बाल-वृद्ध-यतीनाञ्च, रोगिणा यद्विधीयते।
स्व-शक्त्या यत्प्रतीकारो, वैयावृत्य तदुच्यते ॥ ४

अर्थ—बाल वृद्ध एव रोगी साधुजनो की शक्ति भर पीडा का प्रतीकार करना ही सेवा कही जाती है।

हिन्दी

सतन की सेवा किया, प्रभु रींझत है आप।
ज्याका बाल खिलाइये, वाका रींझत बाप ॥
सेवा से पायो सुखरे, शुभ पुण्य खजाना भरता है।
नदिषेण और बाहुबली का अनुपम सुख बल पाता है ॥

उर्दू

खिदमत करू मैं सबकी, खिदमतगुजार बनकर।
दुश्मन के भी न खटकूं, आखो मे खार१ बनकर ॥
"जफर"

वही है जिन्दगी जो, नाम पाती है भलाई मे।
खुदी को छोडकर जो पहुंच जाती खुदाई मे।
मिसाले बुलबुला२ है जिन्दगी दुनियाए३ फानी मे।
जो तुझसे हो सके करले भलाई जिन्दगानी मे ॥
"असीर"

१-काटा २-पानी का फोला ३-नश्वर ससार

अर्थ—उत्तम-गुण धारण करने वालो की नियत सेवा करो और सव गुण मन से निकल जाते, पर सेवा गुण कभी भुलाया नहीं जाता ।

संस्कृत

वाल-वृद्ध-यतीनाञ्च, रोगिणा यद्विधीयते ।
स्व-शक्त्या यत्प्रतीकारो, वैयावृत्य तदुच्यते ।। ४

अर्थ—वाल वृद्ध एव रोगी साधुजनो की शक्ति भर पीडा का प्रतीकार करना ही सेवा कही जाती है ।

हिन्दी

सतन की सेवा किया, प्रभु रीझत है आप ।
ज्याका बाल खिलाइये, वाका रीझत बाप ।।
सेवा से पापी सुधरे, शुभ पुण्य खजाना भरता है ।
नदिषेण और बाहुबली का अनुपम सुख बल पाता है ।।

उर्दू

खिदमत करू मैं सबकी, खिदमतगुजार बनकर ।
दुश्मन के भी न खटकू, आखो मे खार[1] बनकर ।।
"जफर"

वही है जिन्दगी जो, नाम पाती है भलाई मे ।
खुदी को छोडकर जो पहुच जाती खुदाई मे ।
मिसाले बुलबुला[2] है जिन्दगी दुनियाए[3] फानी में ।
जो तुझसे हो सके करले भलाई जिन्दगानी में ।।
"अमीर"

१-काटा २-पानी का फोला ३-नश्वर ससार

दूसरो को जिसने दुनिया मे बनाया कामयाब।
जिन्दगी उसकी है "दानिश" उसका जीना है सफल॥
'दानिश'

तमन्ना दर्दे दिल की हो तो कर खिदमत फकीरो की।
नहीं मिलता है यह गोहर[1], बादशाहो के खजाने मे॥

खुदा के बन्दे तो हैं हजारो, वनो मे फिरते हैं मारे मारे।
मैं उसका बन्दा बनू गा, जिसको खुदा के बन्दो से प्यार होगा॥
"इकबाल"

किसी दुनिया के बन्दे को, अगर शौके[2]-शहादत हो।
तो उसका काम दुनिया मे, सदा इन्सा की खिदमत हो॥

---

१ मोती २-बलिदान

६०

न सूरत बुरी है न सीरत बुरी है। बुरा है वोही जिसकी नीयत बुरी है।

११

प्रमाद–परिणाम

प्राकृत

मज्ज विसय कसाया, निद्दा विगहा य पचमी भणिया ।
एए पच पमाया, जीव पाडति ससारे ।। १

अर्थ—मद्य-नशा, इन्द्रियो के विषय, चार कषाय, निद्रा और विकथा– ये पाच प्रमाद कहे गये हैं, जो जीव को ससार गर्त मे गिराने वाले है।

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्व पाणिण ।
गाढा य विवाग–कम्मुणो, समय गोयम ! मा पमायए ।। २

अर्थ—निश्चय ही मनुष्य जन्म दीर्घ काल से भी सब प्राणियो को मिलना दुर्लभ है। क्योकि कर्म के विपाक तीव्र होते हैं, इसलिये हे गौतम ! क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

जस्सत्थि मच्चुणा सक्ख, जस्स वऽत्थि पलायण ।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कखे सुए सिया ।। ३

अर्थ—कल की इच्छा वही कर सकता है जो मौत के मुह से बचकर पलायन कर सके या जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो अथवा जो यह जानता हो कि मै नही मरु गा ।

सम्कृत

यावत्स्वस्थमिद शरीरमरुज, यावज्जरा दूरतो ।
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता, यावत्क्षयो नायुष ।
आत्मश्रेयसितावदेव विदुषा, कार्यं प्रयत्नो महान् ।
प्रोद्दीप्ते भवने च कूप खनन,प्रत्युद्यम कीदृश । ४

—भर्तृहरि

अर्थ—जब तक शरीर स्वस्थ और नीरोग है तथा बुढापा दूर है, जब तक इन्द्रियो की शक्ति कम नही हुई है और आयु भी समाप्त नही हुआ है, तभी तक विद्वानो को आत्म कल्याण के कार्यो मे महान् प्रयत्न करना ठीक है। क्योकि घर जलने के समय मे कूप खोदने के उद्यम से क्या होगा ? अर्थात कुछ नही ।

हिन्दी

का वर्षा जब कृषि सुखाने, समय गये पुनि का पछताने।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब ।
पल मे परलय होयगी, फेर करेगो कब्ब ।।

एक सास खाली मत खोयले खलक बीच,
कीचक कलक अग धोयले तो धोयले ।
उर अवियार पाप पूर को भरयो है जामे,
ज्ञान की चिराग चित्त जोयले तो जोयले ।।

मानुस जनम ऐसो, फेर न मिलेगो मूढ़,
परम प्रभु से प्यारो होयले तो होयले।
क्षण भंग देह यामे जनम सुधारबो है,
बीज के झमके, मोती पोयले तो पोयले॥

उर्दू

फैल गई बालों मे सुफेदी, चौंक जरा करवट तो बदल।
शाम से गाफिल सोनेवाले, देख तो कितनी रात हुई॥

—आरजूलखनवी

●●

जब तेरी बदफैलियों का खात्मा हो जाएगा।
तब तेरा ही आत्मा परमात्मा हो जाएगा॥

जोअपनी खुदी से जुदा हो गया।
खुदा की कसम वोह खुदा हो गया।

१२

अप्रमाद

प्राकृत

धीरो ! मुहुत्तमपि णो पमायए,
वओो अच्चेइ जोव्वणं च । आचा०

अर्थ—हे धीर ! एक क्षण का भी प्रमाद न कर । तेरी आयु बीत रही है और यौवन ढल रहा है ।

त तह दुल्लह लभ, विजुलया-चचल माणुसत्त ।
लद्धूण जो पमायइ, सो कापुरिसो न सप्पुरिसो ॥

अर्थ—अति दुर्लभ तथा विजली के समान चचल जन्म पाकर भी जो आत्म-साधना मे प्रमाद करता है, वह कापुरुष है, सत्पुरुष नही ।

ज कल्ले कायव्व, णरेण अज्जेव वर काउ ।
मच्चू अकलुण-हिअओ, न हु दीसई आवयतोवि ॥
बृहत्कल्प भाष्य

अर्थ—मनुष्य ! तुम्हे जो सत्कर्म कल करना है, उसे आज ही करलेना श्रेयस्कर है। मृत्यु बडी निर्दय है, वह आती हुई नही दिखाई पडती।

परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते।
ते सव्व बले य हायई, समय गोयम मा पमायए।

अर्थ—तुम्हारा शरीर जीर्ण होता जा रहा है और सिर के बाल सफेद। सब प्रकार का बल क्षीण हो रहा है इसलिये गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।

संस्कृत

अप्रमादोऽमृत पद, प्रमादो पदमापदाम्।
अप्रमत्ता न म्रियन्ते, प्रमत्ताना ध्रुवा मृति । १

अर्थ—अप्रमाद याने जागरूकता निर्वाण का पद है और प्रमाद विपत्ति का स्थान है। प्रमाद रहित प्राणी कभी नाश नही पाते तथा प्रमादी का विनाश निश्चित है।

प्रमाद माऽनुयुञ्जीथा, मा कामरति सस्तवम्।
अप्रमत्तो हि सध्यायन्, प्राप्नोति विपुल सुखम्। २

अर्थ—प्रमाद मे मन को नही लगाओ और विषय वासना के सम्पर्क मे नही पडो, क्योकि ध्यानलीन अप्रमादी व्यक्ति ही महान् सुख को प्राप्त करता है।

प्रमादमनुयुञ्जन्ति, बाला दुर्मेधसो जना।
अप्रमादञ्च मेधावी, धन श्रेष्ठीव रक्षति। ३ "धम्मपद"

अर्थ—मूर्ख और दुर्बुद्धि व्यक्ति प्रमाद मे मन लगाते हैं किन्तु बुद्धिमान पुरुष अप्रमाद की ऐसी रक्षा करते है जैसे सेठ धनकी ।

आयुष क्षण एकोऽपि, सर्वं रत्नै नं लभ्यते ।
नीयते तद् वृथा येन, प्रमाद सुमहानहो ।। ४

योगवाशिष्ठ

अर्थ—ससार के समस्त रत्नो के द्वारा भी आयु का एक क्षण प्राप्त नही किया जा सकता, ऐसी वेशकीमती आयु को व्यर्थ मे गवाना महान् प्रमाद है ।

मघवा ह्यप्रमादेन, देवाना श्रेष्ठता गत ।
अप्रमाद प्रशसन्ति, प्रमादो गर्हित' सदा । ५

अर्थ—देवराज इन्द्र अप्रमाद के वल से ही देवो मे श्रेष्ठत्व को प्राप्त करता है । ससार के सभी लोग अप्रमाद की प्रशसा करते हैं प्रमाद सदा निन्दित माना गया है ।

१३

काम-भोग

प्राकृत

सव्व विलवियं गीय, सव्व नट्टं विडम्बियं ।
सव्वे आभरणाभारा, सव्वे कामा दुहावहा । उत्त० १

अर्थ—सब वषयिक गान विलाप हैं, सब नाचरग विडम्बना है, सब अलकार शरीर के बोझ है, अधिक क्या ? ससार के सभी काम-भोग दु.खावह हैं ।

सुटठु वि मग्गिज्जतो, कत्थ वि केलेइ नत्थि जह सारो ।
इ दिय-विसएसु तहा, नत्थि सुह सुट्ठु वि गविट्ठ ।। २
भत्त-परिज्ञा

अर्थ—जैसे कदली स्तम्भ मे ढूंढने पर भी कही सार नही मिलता, इसी प्रकार इन्द्रिय के विषयो मे ज्ञानियो ने पूरी छानवीन के वाद भी कही सुख नही देखा ।

जहा किंपाग-फलाण, परिणामो न सुन्दरो ।
एव भुत्ताण भोगाण, परिणामो न सुन्दरो ।। उत्तरा० ३

अर्थ—जैसे किंपाक फलो का परिणाम अच्छा नही होता, उसी प्रकार भोगे हुए भोगो का परिणाम भी अच्छा नही होता ।

खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
ससारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥ ४

अर्थ—काम-भोग क्षण भर सुख और चिरकाल तक दु ख देने वाले है बहुत दु ख और थोडा सुख देने वाले है । ये ससार और मुक्ति के विरोधी एव अनर्थो की खान है ।

सल्ल कामा विस कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गइ ॥ ५ उ० ९/५३

अर्थ—काम-भोग शल्य है, विष है, और आशीविष-सर्प के समान है । काम-भोग की चाह करने वाले, उनका सेवन न करते हुए भो दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

संस्कृत

न जातु काम कामाना-मुप-भोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूय एवाभिवर्धते ॥ १

अर्थ—कभी भी काम कामोपभोग से शान्त नही होता । जैसे हविष-आहुति द्रव्यो से आग बढती ही है, कम नही होती ।

तावन्महत्व पाण्डित्य, कुलीनत्व विवेकिता ।
यावज्ज्वलति नाङ्गेषु, हत पञ्चेषु-पावक । २ भर्तृहरि

अर्थ—बडप्पन, पाण्डित्य, कुलीनता और विवेक मनुष्य मे तभी तक रहते है, जब तक तन मे काम की अग्नि प्रज्वलित नही होती ।

तावदशेष-विचार समर्थस्तावदखण्डितमूर्जित मानम् ।
तावदपास्तमलो मननीयो, यावदनङ्ग वशी न मनुष्य । २

अर्थ—तभी तक मनुष्य समस्त विचारो मे समर्थ है, तभी तक सम्पूर्ण मान को भी प्राप्त करता है और तभी तक वह निर्दोष एव मननीय माना जाता है, जब तक कि काम के वश मे नही गिरता ।

नैतिरति गृह पत्तन मध्ये, ग्राम-धन-स्वजनान्य-जनेषु ।
वर्ष सम क्षणमेकमवैति, पुष्पधनु वंशतामुपयात । ३

अर्थ—उस व्यक्ति को घर या पत्तन मे, ग्राम मे धन मे, और स्वजन या किसी दूसरे मे हर्ष प्राप्त नही होता । जो काम के वश मे पडा हुआ है उसका एक क्षण भी वर्ष के समान लम्बा मालूम देता है ।

चारुगुणो विदिताखिल शास्त्र, कर्म करोति कुलीन-विनिन्द्यम् ।
मातृ पितृ स्वजनान्य जनाना, नैतिवश मदनस्य वशो ना । ४

अर्थ—सुन्दर गुणो वाला, समस्त शास्त्रो का जानकार और कुलीनो की तरह अनिन्दित कर्मो को करने वाला मनुष्य काम वश होने पर माता-पिता स्वजन एव अन्य किसी भी व्यक्ति के वश मे नही होता, वह निन्दित कर्म कर गुजरता है ।

चिन्तन कीर्तन भाषण केलि-स्पर्शन दर्शन विभ्रम हास्यै ।
अष्ट विध निगदन्ति मुनीन्द्रा काममपाकृतकाम विबाधा । ५

अर्थ—काम विकार की बाधा से दूर रहने वाले मुनियो ने, चिन्तन, कीर्तन, भाषण, केलि, स्पर्शन, दर्शन, आदर और हास्य इस प्रकार काम को आठ प्रकार का कहा है ।

दिवा पश्यति नो घूक, काको नक्त न पश्यति ।
अपूर्व कोऽपि कामान्ध, दिवा नक्त न पश्यति । ६

अर्थ—उल्लू दिन मे नही देखता और कौआ रात को नही देखता है ।
मगर कामान्ध तो अपूर्व व्यक्ति होता है जो दिन और रात
दोनो मे नही देखता ।

कृश काण खञ्ज श्रवण रहित पुच्छ विकल ।
व्रणी पूति क्लिन्न कृमिकुल शतैरावृत तनु ।
क्षुधा क्षामो जीर्ण, पिठरक कपालार्पित-गल ।
शुनीमन्वेति श्वा, हतमपि च हन्त्येव मदन ॥

अर्थ—कानो कृश पगु कान पूछने विहीन दीन,
पुरछत छाय पेर पूय की पनारे है ।
वाल वालहु मे कृमिजालने विहालतन,
अग सब भगभए वीरते पुकारे है ।
छुधाने विसेस छीन, जीरन मलीन महा,
भूपण सो हडिका कपाल गल धारे है,
ऐसी ही दसा मे सुनि ही की लार दोरतु है,
मरे ताहू स्वान को मनोज पुनि मारे है ।

या चिन्तयामि सतत मयि सा विरक्ता, साप्यन्यमिच्छति जन
सजनोऽन्य सक्त ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या, धिक् ताच तच मदनच
इमाच माच । ८

अर्थ—मैं सतत जिसकी इच्छा करता हूँ वह मुझ मे अनुराग वाली
नही है तथा वह किसी अन्य को चाहती है एव वह आदमी

किसी दूसरी मे आसक्त है। मेरे लिए कोई दूसरी प्रसन्न दिखाई देती है, अत उस पिंगला को, उस पुरुष को, मदन को इस स्त्री को और मुझको धिक्कार है।

विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशिना–,
स्तेऽपि स्त्रीमुख-पङ्कज सुललित दृष्ट्वैव मोहगता'।
शाल्यन्न सघृत पयोदधियुत ये भुञ्जते मानवा,
तेषामिन्द्रिय निग्रहो यदि भवेत् विन्ध्यस्तरेत् सागरम्॥ ९

अर्थ—विश्वामित्र पराशर आदि ऋषिगण जोकि हवा जल एव पत्ते खा कर रहते थे, वे भी स्त्री के सुन्दर मुख कमल को देख कर मुग्ध हो गए तो फिर जो मानव घी दूध और दही युक्त उत्तम भात खाते हैं। अगर उनको इन्द्रिय निग्रह हो जाय तो यह विन्ध्य पर्वत के सागर तैरने जैसा है अर्थात् असभव है।

हिन्दी

अस्थि चर्ममय देह मम, तामे जैसी प्रीति।
वैसी जो श्री राम मह, होति न तो भव भीति॥

—तुलसी

जैसा चित्त हराम में, वैसा हर से होय।
चला जाय वैकुण्ठ मे, पला न पकडे कोय॥

रहिमन राम न उरबसे, रहत विषय लपटाय।
पशु खर खात सवाद सौं, गुड गुलियाई खाय॥

काम भोग प्यारा लगे, फल किंपाक समान।
मीठी खाज खुजालता, पीछे दुख की खान॥

जो आपन चाहइ कल्याना सुजस सुमति सुभगति सुख नाना।
तो पर नारि लिलार गोसाई, तजहु चौथ के चन्द की नाई।
'तुलसी'

तीनो मूल उपाधिकी, जर जोरू जमीन।
है उपाधि तिसके कहा, जाके नहिं ये तीन।
जाके नहिं ये तीन, हृदय मे नाहिन इच्छा।
परम सुखी सो साधु, खाय यद्यपि लैभिच्छा।
कह 'गिरिधर कविराय', एक आतमरस भीनो।
निर्भय विचरे सन्त, सर्वथा तजकर तीनो।
। गिरिधर।

मन्त्र यन्त्र औषधन ते, तजत सर्प विषलाग।
यह क्यो हू उतरत नहीं, नारि नयन को नाग।

विनु सतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सपनेहु सुख नाहीं॥ "तुलसी"

उर्दू

इश्क के घाट किसको सभलते देखा।
अच्छे अच्छो को यहा पाव फिसलते देखा।

मुहब्बत नहीं आग से खेलना है, लगाना पडेगा बुझाना पडेगा।
"आरजू"

रंग चेहरे का जाफरानी है। आशिको की यही निशानी है। "अमीन"

ऐ इश्क तूने अक्सर कौमो को खाके छोडा।
जिस घर से सर उठाया, उसको बिठा के छोडा। "हाली"

इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे कामके ॥ 'गालिब'

मालूम जो होता अंजामे मुहब्बत।
लेते न कभी भूल के हमनामेमुहब्बत।
'जौक'

मकतबे इश्क का दुनिया मे निराला है सबक।
उसको छुट्टी न मिली, जिसको सबक याद हुआ।
इस इश्को-आशिकी के मजे हम से पूछिए।
दौलत लुटाई, रंज सहे, सो दिया ख़्वाब[1] ॥
"बेखुद देहलवी"

काबे भी हम गए न गया पर बुतो का इश्क।
इस दर्द की खुदा के भी घर मे दवा नहीं।
"यकीन सरहदी"

इश्क की जिस पर इनायत[2] हो गई।
होश जाइल[3] अक्ल रुखसत हो गई ॥
"जलील" अच्छा नहीं आबाद करना घर मुहब्बत का।
यह उनका काम है जो जिन्दगी बरबाद करते हैं ॥
बुरी है ऐ दाग ! राहे उल्फत खुदा न लेजाय ऐसे रस्ते।
जो चाहते हो तुम खैर अपनी, तो भूलकर दिललगी न करना ॥

---

१ शान्ति २, कृपा ३ नष्ट

१४

ब्रह्मचर्य

<u>प्राकृत</u>

जीवो बभा जीवम्मि चेव, चरिया हविज्ज जा जदिणो।
त जाण बभचेर, विमुक्क परदेह-तित्तिस्स ॥ १

अर्थ—आत्मा ब्रह्म है और जिसने पर–देह मे प्रवृत्ति करना छोड दिया है, ऐसे साधकयति की जो आत्मा मे चर्या है, उसी को ब्रह्मचर्य समझना चाहिये।

देवदाणवगन्धब्वा, जक्खरक्खस किन्नरा।
बम्भयारि नमसति, दुक्कर जे करन्ति त ॥ २ उ० १६/१६

अर्थ—उस ब्रह्मचारी को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष राक्षस और किन्नर–ये सभी नमस्कार करते है, जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

दिव्व माणुस तेरिच्छ, जो न सेवइ मेहुण।
मणसा काय वक्केण, त वय बूम माहण ॥ ३

अर्थ—जो देव मनुष्य और तिर्यंच सबधी मैथुन का मन, वचन और काय से सेवन नही करता, उसे ब्राह्मण कहते है।

विभूस परिवज्जेज्जा, सरीर परिमडणं।
बमचेर रम्रो भिक्खू, सिंगारत्थ न धारए॥ ४

अर्थ—शरीर का सस्कार एव शोभा–विभूषा रूप शृ गार को ब्रह्मचर्य मे लीन साधु छोड दे, शृ गार का अर्थ—भाव मन मे नही रक्खे।

तवेसु वा उत्तम बभचेर। ५ सूत्र. ५ उ० २३।

अर्थ—ब्रह्मचर्य सभी तपो मे उत्तम तप है।

विरई अबभचेरस्स, काम भोग रसन्नुणा।
उग्ग महव्वय बभ, धारेयव्व सुदुक्कर।६ उत्त० अ० १६ गा०२८

अर्थ—काम–भोगो का रस जानने वाले के लिए अब्रह्मचर्य से विरक्त होना और उग्र ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करना, बडा ही कठिन कार्य है।

अबभचरिय घोर, पमाय दुरहिट्ठिय।
नायरति मुणी लोए, भेयाययण-वज्जिणो।७ दश अ ६ गा १६

अर्थ—जो मुनि सयम–घातक दोषो से दूर रहते हैं वे लोक मे रहते हुए भी दु सेव्य प्रमाद स्वरूप और भयकर अब्रह्मचर्य का सेवन नही करते।

मूल-मेय-महम्मस्स, महादोष-समुस्सिय।
तम्हा मेहुण-ससग्ग, निग्गथा वज्जयति ण। ८ दश अ ६ गा ११

अर्थ—मैथुन ससर्ग, अधर्म का मूल है, महादोषो का स्थान है। इस लिए निर्ग्रन्थ मुनि इसका सर्वथा परित्याग करते है।

न रूव-लावण्ण-विलास-हास, न जपिय इ गिय-पेहिय वा ।
इत्थीरण चित्त सि निवेसइत्ता, दट्ठु ववस्से समरणे तवस्सी ।। ९
उ० अ० ३२ गा० ४

अर्थ—श्रमरण तपस्वी, स्त्रियो के रूप, लावण्य, विलास, हास्य, मधुर वचन सकेत चेष्टा, हाव–भाव और कटाक्ष आदि का मन मे थोडा भी विचार न लाए और न इन्हे देखने का प्रयत्न करे ।

अदसरण चेव अपत्थरणच, अचितरण चेव अकित्तरण च ।
इत्थी जणस्साऽऽरियज्भाण–जुग्ग, हिय सया बभवए रयाण ।।१०
उत्त०अ० ३२ गा० १५

अर्थ—ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्रियो को राग पूर्वक नही देखे, उनकी अभिलाषा नही करे, उनका चिन्तन नही करे, उनका कीर्तन नही करे । ब्रह्मचर्य मे लीन रहने वाले पुरुषो के लिए यह नियम अत्यन्त हितकर है और यह उत्तम ध्यान साधन मे सहायक है ।

विभूस परिवज्जेज्जा, सरीर-परिमडरण ।
बभचेर-रओ भिक्खू, सिगारत्थ न धारए ।११ उत्त अ १६ गा ११

अर्थ—ब्रह्मचर्य रत भिक्षुक को श्रृ गार के लिए शरीर की शोभा और सजावट का कोई भी श्रृ गारी काम नही करना चाहिए ।

विभूसा इत्थि-ससग्गो, पणीय रस-भोयरण ।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसतालउड जहा । १२ दश अ ८ गा ५६

अर्थ—आत्म–शोधक नर के लिए, शरीर का श्रृ गार, स्त्रियो का ससर्ग और स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन तालपुट विष के समान भयकर समझना चाहिये ।

मण-पल्हाय जणणी, काम-राग विवड्ढणी ।
बभचेर रओ भिक्खू, थीकह तु विवज्जए। १३ उत्त अ १६ गा २

अर्थ—मन मे विषय आह्लाद को उत्पन्न करने वाली तथा काम राग को बढाने वाली, स्त्रीकथा ब्रह्मचारियो को छोड देनी चाहिए।

पणीय भत्त पाणतु, खिप्प मय-विवड्ढण ।
बभचेर-रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए। १४ उत्त अ १६ गा ६

अर्थ—ब्रह्मचारी को शीघ्र वासनावर्द्धक, पुष्टिकारक भोजन व पान का सदा परित्याग करना चाहिए।

मोक्खाभिकखिस्स उ माणवस्स, ससार-भीरुस्स ठियस्स धम्मे ।
नेयारिस दुत्तर-मत्थि लोए, जहित्थिओ बाल-मणोहराओ। १५
उत्त० १ अ० ३२ गा० १७

अर्थ—मोक्षाभिलाषी और ससार भ्रमण से भीरु तथा धर्मलीन पुरुष के लिए इस ससार मे नव-यौवना मनोरम स्त्रियो का त्याग जितना कठिन है, उतना कठिन कार्य दूसरा नही है।

सम च सथव थीहि, सकह च अभिक्खण ।
बभचेर रओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए। १६
उत्त० अ० १६ गा० ३

अथ—ब्रह्मचर्य-रत भिक्षु को स्त्रियो के साथ बातचीत करना और उनका बारम्बार परिचय प्राप्त करना नित्य के लिए छोड देना चाहिए।

रसा पगाम न निसेवियव्वा,
पाय रसा दित्तिकरा नराण। १७ उत्त० अ० ३२ गा० १०

अर्थ—साधक को बार बार रसो का सेवन नही करना चाहिए। क्योकि रस इन्द्रियो को उत्तेजित करने वाले होते हैं।

सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य।
पच विहे काम-गुणे, निच्चसो परिवज्जए।१८ उत्त०अ० २गा०१

अर्थ—ब्रह्मचारी भिक्षु को शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन पाच प्रकार के काम गुणो को सदा छोड देना चाहिए।

कामाणु गिद्धिप्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जे काइयं माणसियं च किंचि तस्सऽन्तगं गच्छइ वीयरागो। १६
उत्त० अ० ३२ गा० १६

अर्थ—देव सहित समस्त ससार के दुःख का मूल एक मात्र काम भोग की वासना ही है। जो साधक इस सम्बन्ध मे वीतराग हो जाता है वह शारीरिक, मानसिक सभी दुःखो से छूट जाता है।

सस्कृत

उडुराज मुखी मृगराजकटी, गजराज विराजित मन्दगति।
यदि सा वनिता हृदयेनिहिता क्व जप क्व तप क्व समाविरति।१

अर्थ—चन्द्रमुखी, केहरि-कटि वाली गजगमना नारी यदि मन मे बस जाय तो फिर जप कहा ? तप कहा ? और समाधि मे तल्लीनता कहा ?

एकमेव व्रत श्लाघ्य, ब्रह्मचर्य जगत्-त्रये।
यद् विशुद्धि समापन्ना, पूज्यन्ते पूजितैरपि ॥ ५

अर्थ—तीनो लोक मे एक ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ व्रत है इसकी शुद्ध आराधना करने वाले, पूज्य जनो के द्वारा भी पूजित होते है।

बस्तिसयम-मात्रेण, ब्रह्म के के न बिभ्रते ।
मन सयमतो धेहि, वीर चेत्तत्फलार्थ्यसि ॥ ६ अध्या कल्प

अर्थ—मात्र बस्ति सयम से ही ब्रह्म को कौन प्राप्त नही करसकता है अगर तुम ब्रह्मचर्य के फलाभिलाषी हो तो हे वीर ! मन को सयत बनाओ ।

स्त्री ससक्तशय्यादेरनुभूताङ्गनास्मृते ।
तत्कथाया श्रुतेश्च स्याद्, ब्रह्मचर्यं हि वर्जनात् ॥
जैन धर्मामृत ११/१४

अर्थ—स्त्री सयुक्त शय्यादि एव कामिनी की स्मृति तथा उसकी कथा और श्रुतिके के त्याग से ही ब्रह्मचर्य प्राप्त होता है ।

विलोक्य दूरस्थममेध्यमल्प, जुगुप्ससे मोटित-नासिकस्त्व ।
भृतेषु तेनैव विमूढ ! योषा, वपुष्षु तत्कि कुरुषेऽभिलाषम् ॥
अध्या० कल्प०

अर्थ—दूर मे रहे हुए थोडे भी अपवित्र मल को देखकर तुम घृणा करते हो एव नाक को मोडते हो, फिर उसी मलमूत्र से भरे स्त्रियो के शरीर मे कैसे इच्छा करते हो ?

हिन्दी

तो मास के कूतरे, तजे भूख अरु प्यास ।
तुलसी उनकी क्या गति, जिनके बारहो मास ॥ तुलसी

अर्थ—साधक को वार वार रसो का सेवन नही करना चाहिए। क्योकि रस इन्द्रियो को उत्तेजित करने वाले होते है।

सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य।
पच विहे काम-गुणे, निच्चसो परिवज्जए।१८ उत्त०अ० २गा०१

अर्थ—ब्रह्मचारी भिक्षु को शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन पाच प्रकार के काम गुणो को सदा छोड देना चाहिए।

कामाणु गिद्धिप्पभव खु दुक्ख, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जे काइय माणसिय च किंचि तस्सऽन्तग गच्छइ वीयरागो। १६
उत्त० अ० ३२ गा० १६

अर्थ—देव सहित समस्त ससार के दु ख का मूल एक मात्र काम भोग की वासना ही हे। जो साधक इस सम्बन्ध मे वीतराग हो जाता है वह शारीरिक, मानसिक सभी दु खो से छूट जाता है।

सस्कृत

उडुराज मुखी मृगराजकटी, गजराज विराजित मन्दगति।
यदि सा वनिता हृदयेनिहिता क्व जप क्व तप क्व समाधिरति।१

अर्थ—चन्द्रमुखी, केहरि-कटि वाली गजगमना नारी यदि मन मे बस जाय तो फिर जप कहा ? तप कहा ? और समाधि मे तल्लीनता कहा ?

एकमेव व्रत श्लाघ्य, ब्रह्मचर्य जगत्-त्रये।
यद् विशुद्धि समापन्ना, पूज्यन्ते पूजितैरपि॥ ५

अर्थ—तीनो लोक मे एक ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ व्रत है इसकी शुद्ध आराधना करने वाले, पूज्य जनो के द्वारा भी पूजित होते हैं।

बस्तिसयम-मात्रेण, ब्रह्म के के न बिभ्रते ।
मन सयमतो धेहि, वीर चेत्तत्फलार्थ्यसि ।। ६ अध्या कल्प

अर्थ—मात्र बस्ति सयम से ही ब्रह्म को कौन प्राप्त नही करसकता है अगर तुम ब्रह्मचर्य के फलाभिलाषी हो तो हे वीर ! मन को सयत बनाओ ।

स्त्री ससक्तशय्यादेरनुभूताङ्गनास्मृते ।
तत्कथाया श्रुतेश्च स्याद्, ब्रह्मचर्य हि वर्जनात् ।।
जैन धर्मामृत ११/१४

अर्थ—स्त्री सयुक्त शय्यादि एव कामिनी की स्मृति तथा उसकी कथा और श्रुतिके के त्याग से ही ब्रह्मचर्य प्राप्त होता है ।

विलोक्य दूरस्थममेध्यमल्प, जुगुप्ससे मोटित-नासिकस्त्व ।
भृतेषु तेनैव विमूढ ! योषा, वपुष्षु तत्कि कुरुषेऽभिलाषम् ।।
अध्या० कल्प०

अर्थ—दूर मे रहे हुए थोडे भी अपवित्र मल को देखकर तुम घृणा करते हो एव नाक को मोडते हो, फिर उसी मलमूत्र से भरे स्त्रियो के शरीर मे कैसे इच्छा करते हो ?

हिन्दी

रती मास के कूतरे, तजे भूख अरु प्यास ।
तुलसी उनकी क्या गति, जिनके बारहो मास ।। तुलसी

वीर्यं ही मे वीरता है, वीर्य धारण अब करो ।
आर्य माता दास्य मे है, दु ख उसका तुम हरो ।।

प्राण धारण कर रही है, बाट अपनी जो रही ।
हाय तो भी हिन्द जनता, विषय सुख में सो रही ।।

सीले सरप न आभडे, सीले सीतल आग ।
सीले अरि करि केहरी, भय जावे सब भाग ।।

वीर्यं ही मे वरीता है, बाहुबल है राज्य है ।
आत्मबल मे मुक्तता है, और मारग त्याज्य हे ।।

विषयो से मन को तृप्त कराना नहीं अच्छा ।
जलती अगिन को घीसे बुझाना नही अच्छा ।।

ज्ञानी ध्यानी सयमी दाता सूर अनेक ।
जपिया तपिया बहुत हैं, शीलवन्त कोई एक ।।

उर्दू

किस काम की नदी वह जिसमे नहीं रवानी ।
जो जोश ही न होतो, किस काम की जवानी ।।

१५

विनय-अधिकार

प्राकृत

विणयाहीणा विज्जा, देंति फलं इह परे य लोगम्मि।
न फलंति विणयहीणा, सस्साणि व तोय हीणाइं ॥ १

अर्थ—विनयपूर्वक पढी गई विद्या, लोक और परलोक में सर्वत्र फलवती होती है। विनयहीन विद्या उसी प्रकार निष्फल होती है, जिस प्रकार जल के बिना धान्य की खेती।

एवं धम्मस्स विणओ, मूलं, परमो से मोक्खो।
जेण कित्तिं सुयं सिग्घं, निस्सेसं चाभिगच्छइ ॥ २

अर्थ—धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उसका अन्तिम फल है। विनय से ही कीर्ति और शीघ्र ही शास्त्रज्ञान तथा अंत में निःश्रेयस (परम कल्याण) की प्राप्ति होती है।

विणएण विप्पहूणस्स, हवदि सिक्खा णिरत्थिया सव्वा।
विणओ सिक्खाए फलं, विणय-फलं सव्व कल्लाणं ॥ ३

अर्थ—विनय रहित मनुष्य की सारी शिक्षा निरर्थक है। शिक्षा का फल विनय है और विनय के फल सारे कल्याण हैं।

विणओ सासणे मूल, विणीओ संजओ भवे।
विणयाओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो? ४

विशेष० भा०

अर्थ—विनय जिन शासन का मूल है, विनीत ही संयमी हो सकता है। जो विनय से हीन है, उसका क्या धर्म और क्या तप?

संस्कृत

तिष्ठता तपसि पुण्यमासजन्, संपदोनुगुणयन् सुखैषिणाम्।
योगिना परिणमन् विमुक्तये, केनमास्तु विनयः सतां प्रियः॥ १

अर्थ—तप की साधना में पुण्य बढ़ाने वाला, सुखैषियों को सम्पदा प्रदान करने वाला, योगियों के लिये मुक्ति में परिणत होने वाला ऐसा विनय सज्जनों को क्यों न प्यारा हो?

नभो भूषा पूषा कमल वन भूषा मधुकरो,
वचो भूषा सत्यं वर-विभव भूषा वितरणम्।
मनो भूषा मैत्री मधु समय भूषा मनसिजः,
सदो भूषा सूक्तिः, सकल गुण भूषा च विनयः॥ २

अर्थ—आकाश का भूषण सूर्य है, कमलवन का भूषण मधुप है, वाणी का भूषण सत्य है, सम्पन्नता का भूषण दान है, मन का भूषण मैत्री है, मधुमास का भूषण काम है, सभा का भूषण सूक्ति है और समस्त गुणों का भूषण विनय है।

हिन्दी

विनय धर्म का मूल है, सब गुण का आधार।
विनयवन्त से जगत मे, सब का होता प्यार।।

नमे तुरी बहु तेज, नमे दातार दीपन्तो।
नमे अम्ब बहु फल्यौ, नमे जलहर वर्षन्तो।।

नमे वस अचूक, नमे कामण कुल नारी।
केहर ने कुंजर नमे, नमे गज बेल समारी।।

कचन नमे कसौटिया, वेण 'ब्रह्म' साचा चवे।
सूखो काठ अजाण नर, भाय पड़ै पिण ना नवे।।

उर्दू

करू मैं दुश्मनी किससे, नहीं दुश्मन कोई मेरा।
मुहब्बत ने जगह दिल में नहीं छोडी अदावत१ को।।

हुस्ने-सीरत२ पर नजर कर, हुस्ने सूरत को न देख।
आदमी है नाम को गर-खू३ नहीं इन्सान की।। 'आरजू'

मैं बतादू आपको अच्छो की क्या पहचान है।
वोह हैं खुद अच्छे, जो औरों को नहीं कहते बुरा। 'जौक'

हम किसी को क्यो कहें, मुंह से बुरा अपने जफर।
हम ही सबसे हैं बुरे, हमसे बुरा कोई नहीं।। 'जफर'

१-विरोध २ स्वभाव ३ लक्षण

पाके दौलत है बशर को रहना लाजिम किस तरह ।
जिस तरह झुक कर रहे, वोह शाख आए जिसमे फल । 'जौक'

ऐ 'जौक' किसको नजरे हिकारत से देखिए ।
सब तो हम से बढकर हैं, कोई भी हम से कम नहीं । 'जफर'

जब मिलें जिससे मिलें, दिल खोलकर मिलें ।
इससे बढकर और कोई, खूबी इन्सा मे नहीं ॥

जिन्दगी ऐसी बना, जिन्दा रहे दिलशाद तू ।
जब न हो दुनिया मे तो दुनिया को आएयाद तू ।

हुस्ने सूरत के लिए, खूबिए सीरत है जरूर ।
गुल वही जिसमे कि खुशबू भी हो रगत के सिवा । 'आसी'

मृग तृष्णा सम वीक्ष्य ससार क्षणभङ्गुरम् ।
सज्जनै सगत कुर्याद् धर्माय च सुखाय च ।
अर्थ—मृग तृष्णा के समान क्षण मे नाश होने वाले ससार को दे[illegible]
धर्म और सुख के लिए श्रेष्ठ पुरुषो का सग करें ।

१६

रात्रि-भोजन निषेध

प्राकृत

सन्ति मे सुहुमा पाणा, तस अदुव थावरा ।
जाइ राम्रो अपासतो, कहमेसणिय चरे । १ दश अ ६ गा २४

अर्थ—ससार मे बहुत से सूक्ष्म त्रस और स्थावर सूक्ष्म प्राणी हैं जो रात मे नही देखे जा सकते । फिर रात मे निर्दोष भोजन कैसे किया जा सकता है ?

चउव्विहे वि आहारे, राई-भोयण-वज्जणा ।
सन्निही-सचयोचेव, वज्जेयव्वो सु दुक्कर । २
उत्त० अ० १९ गा० ३०

अथ—अन्न आदि चारो प्रकार के भोजन का रात मे सेवन नही करना चाहिए। इतना ही नही दिन मे खाने के लिए भी रात्रि भोजन-सग्रह नही रखना, यह अरात्रि भोजन बडा दुष्कर है ।

पाणिवह-मुसावाया-ऽदत्त मेहुण-परिग्गहा-विरओ ।
राइ-भोयण-विरओ, जीवो भवइ अणासवो । ३

पाके दौलत है बशर को रहना लाजिम किस तरह ।
जिस तरह झुक कर रहे, वोह शाख आए जिसमे फल । 'जौक'

ऐ 'जौक' किसको नजरे हिकारत से देखिए ।
सब तो हम से बढकर हैं, कोई भी हम से कम नही । 'जफर'

जब मिलें जिससे मिलें, दिल खोलकर मिलें ।
इससे बढकर और कोई, खूबी इन्सा मे नहीं ॥

जिन्दगी ऐसी बना, जिन्दा रहे दिलशाद तू ।
जब न हो दुनिया मे तो दुनिया को आएयाद तू ।

हुस्ने सूरत के लिए, खूबिए सीरत है जरूर ।
गुल वही जिसमे कि खुशबू भी हो रगत के सिवा । 'आसी'

७०

मृग तृष्णा सम वीक्ष्य ससार क्षणभङ्गुरम ।
सज्जनैं सगत कुर्याद् धर्माय च सुखाय च ।
अर्थ—मृग तृष्णा के समान क्षण मे नाश होने वाले ससार को देख कर
धर्म और सुख के लिए श्रेष्ठ पुरुषो का सग करें ।

१६

रात्रि—भोजन निषेध

प्राकृत

सन्ति मे सुहुमा पाणा, तस अदुव थावरा ।
जाइ राओो अपासतो, कहमेसणिय चरे । १ दश अ ६ गा २४

अर्थ—ससार मे बहुत से सूक्ष्म त्रस और स्थावर सूक्ष्म प्राणी है जो रात मे नही देखे जा सकते । फिर रात मे निर्दोष भोजन कैसे किया जा सकता है ?

चउव्विहे वि आहारे, राई—भोयण-वज्जणा ।
सन्निही-सचयोचेव, वज्जेयव्वो सु दुक्कर । २
उत्त० अ० १६ गा० ३०

अथ—अन्न आदि चारो प्रकार के भोजन का रात मे सेवन नही करना चाहिए। इतना ही नही दिन मे खाने के लिए भी रात्रि भोजन—सग्रह नही रखना, यह अरात्रि भोजन बडा दुष्कर है ।

पाणिवह-मुसावाया-ऽदत्त मेहुण-परिग्गहा-विरओ ।
राइ-भोयण-विरओ, जीवो भवइ अणासवो । ३

अर्थ—हिंसा, झूठ, चोरी मैथुन, परिग्रह और रात्रि भोजन इनसे जो जीव विरत रहता है वह आस्रव रहित हो जाता है।

से असणं वा, पाणं वा, खाइम वा साइम वा, नेव सय-राइ भुंजिज्जा,

नेवन्नेहिं राइ भुंजाविज्जा, राइ भुंजते वि अन्नं न समणु-जाणिज्जा। ४ दश० अ० ४

अर्थ—साधक अन्न, पानी, खाद्य और स्वाद्य इन चारो प्रकार के आहार का रात्रि मे न स्वय सेवन करे, न दूसरो को सेवन करने की प्रेरणा दे और न सेवन करने वाले का अनुमोदन ही करे।

अत्थ गयम्मि आइच्चे, पुरत्थाय अणुग्गए।
आहारमाइय सव्व, मणसा वि न पत्थए। ५ दश अ ८ गा २८

अर्थ—सूर्योदय से पहले और सूर्यास्त के बाद सयमी को भोजन पान आदि किसी भी वस्तु की इच्छा नही करनी चाहिए।

संस्कृत

अस्तगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते।
अन्न मास सम प्रोक्त,-मार्कण्डेय-महर्षिणा॥ १

अर्थ—मार्कण्डेय महर्षि ने सूर्य के अस्त होने पर जल ग्रहण को रुधिर तुल्य और अन्न को मास के समान कहा है।

रक्त भवन्ति तोयानि, अन्नादि पिशित भवेत्।
रात्रिभोजनसक्तस्य, भोजन क्रियते कथम्॥ २

महा० शान्ति०

अर्थ—रात्रि मे भोजन करने वाले को जल रक्त के समान और अन्न मास के समान होता है, तब रात्रि को भोजन कैसे किया जाय ?

ये रात्रौ सर्वदाऽऽहार, वर्जयन्ति सुमेधस ।
तेषा पक्षोपवासस्य, फल मासेन जायते ।। ३

अर्थ—जो बुद्धिमान मनुष्य सर्वदा रात को नही खाते, उनको प्रति मास एक पक्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है ।

हृन्नाभिपद्मसकोचश्चण्डरोचेरभावत ।
अतो नक्त न भोक्तव्य सूक्ष्मजीवादनादपि ।। ४ आयुर्वेद

अर्थ—सूर्य किरण के अभाव से हृदय एव नाभि कमल सकुचित होजाता। और कदाचित सूक्ष्म जीवखाने मे न आ जाय इस दृष्टि से भी रात मे नही खाना चाहिए । "आयुर्वेद"

मेधा पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्जलोदरम्,
कुरुते मक्षिका वाति, कुष्ठरोग च कोलिका।
कटक दारुखण्ड च, वितनोति गलव्यथाम्,
व्यञ्जनान्तर्निपतित, तालु विध्यति वृश्चिक ।। ५

अर्थ—अगर भोजन मे चीटी पेट में पड जाय तो बुद्धि मारी जाती है और जू जलोदर उत्पन्न करता है, मक्खी उल्टी कराती है और कोलिक-मकडी कुष्ठ रोग, कटक और लकडी के टुकडे गले मे दर्द बढाते है और सब्जी के भीतर पडे बिच्छू तालु को बेधते है । अत रात्रि भोजन का वर्जन करना चाहिये ।

उलूक काकमार्जार गृद्ध-शबर-शूकरा।
अहिवृश्चिक गोधाश्च, जायन्ते रात्रि भोजनात् ॥ ११

अर्थ—उल्लू, कौआ, बिल्ली, गृद्ध, शृगाल, शूकर, सर्प, बिच्छू, छिप-किली ये सभी रात्रि भोजन के कारण ही उत्पन्न होते हैं।

हिन्दी

मुसलमान राते भखै, हिन्दू दिवस प्रमाण।
तकियो भोजन रात रो, तो व्रत रोजा सम जाण॥

व्रत रोजा सम जाण, खाण ऐ अखज बरोबर।
कर कर जीव आहार जाय उपजै जमनै घर॥

भोभर भिष्टा मुख ठवै, बलबलता अंगार।
'रत्न' कहे तिन कारणैं, त्याग करो नर नार॥

चिडी कमेडी कागला, रात चुगण नहिं जाय।
नर देह धारी मानवी, रात पड्या क्यूं खाय॥

रात पड्या क्यूं खाय, जाय मार्‌या त्रस प्राणी।
कीट पतंगा कथुवा, पडै भाणा मे आणी॥

लट गजाई सुलसली, इली अंड समेत।
'रतन' कहे धिक् तेहने, खावे कर कर हेत॥

—आचार्य रत्नचन्द्र

१७

इन्द्रियनिग्रह

प्राकृत

सद्देसु 'अरूवेसु' अ,गधेसु रसेसु तह य फासेसु।
न विरञ्जइ नविदुस्सइ, एसाखलु इ दिअ-प्पणिही ॥ १

अर्थ—शब्द, रूप, गध रस और स्पर्श मे जिसका चित्त न तो अनुरक्त होता है और न द्वेष करता है उसीको इन्द्रिय निग्रह-इन्द्रिय प्रणिधि कहते है।

जे य कते पिए भोए, लद्धेवि पिट्ठि कुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए, सेहु चाइत्ति वुच्चइ ॥ २

अर्थ—जो मनोहर और प्रिय भोगो के उपलब्ध होने पर भी स्वाधीनता पूर्वक उन्हे पीठ दिखा देता है–त्यागदेता है, वस्तुत वही त्यागी या इन्द्रिय निग्रही है।

सस्कृत

दूर्वा ड् कुराशन-समृद्ध वपु कुरङ्ग,
क्रीडन् वनेषु हरिणीभिरसौ विलासैः।

अत्यन्त गेय-रव-दत्तमना वराक,
श्रोत्रेन्द्रियेण समवर्ति-मुख प्रयाति ॥ १

अर्थ—दूवके कोमल अ कुरो को खाकर पुष्ट शरीरवाला हिरण, वन मे हरिणियो के सग विलास युक्त क्रीडा करता हुआ, अत्यन्त मधुर गीत के स्वर मे मन देकर, श्रोत्रेन्द्रिय के कारण काल के मुख मे चला जाता है।

इन्द्रियाणा विचरता, विपयेष्वपहारिषु ।
सयमेयत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ २

अर्थ—विद्वान् को चाहिए कि विषयाकृष्ट इन्द्रियो को यत्न पूर्वक सयम मे रक्खें। जैसे कि सारथि घोडे को वश मे रखता है।

न तथैतानि शक्यन्ते, सन्नियन्तुमसेवया ।
विषयेषु प्रजुष्टानि, यथा ज्ञानेन नित्यश । ३ "मनु"

अर्थ—विपयासक्त इन्द्रियो को, विपय विमुख करने मात्र से वास्तविक दृष्टि से वे सयत नही होते, जैसा कि नित्य ज्ञान के द्वारा उन्हे सयत बनाया जा सकता है।

आपदा कथित पन्था, इन्द्रियाणामसयम ।
तज्जय सपदा मार्गो, येनेष्ट तेन गम्यताम् ॥ ४

अर्थ—इद्रियो के असयम को आपत्तियो का मार्ग कहा गया है और इन्द्रिय जय को सम्पदा का। आप जिसे पसन्द करें उसी से गमन करें।

अजानन् दाहार्ति विशति शलभो दीपक मुखे,
न मीनोऽपि ज्ञात्वा वडिशयुतमश्नाति पिशितम् ।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जाल जटिलान्,
न मुञ्चाम कामान् अहह विषमा कर्मगतय । ५

अर्थ—दाहकी पीडा को नही जानते हुए शलभ दीपक के मुख मे प्रवेश करता है और मछली भी काटा युक्त आटा को अनजाने ही खाती है। मगर हम सब इस विपत्तिकारी जटिल जाल को जानते हुए भी काम को नही छोडते है। हाय ! कर्म की गति बडी विषम है।

दन्तीन्द्र-दन्त-दलनैक-विधौ समर्था,
सन्त्यत्र रौद्र-मृगराज-वधेप्रवीणा ।
आशी-विषोरग वशी-करणेऽपि दक्षा,
पञ्चाक्ष निर्जय परास्तु न सन्ति मर्त्या, ६

अर्थ—ससार मे गजराज के दातो को तोडने मे कई समर्थ है तथा भयकर सिंह को मारने मे भी कई निपुण हैं । दृष्टिविष सर्प को वश करने मे भी कई चतुर है किन्तु पञ्चेन्द्रियो को जीतने मे समर्थ विरले ही नर नजर आते हैं।

ससार सागर-निरूपण दत्त चित्ता,
सन्तो वदन्ति मधुरा- विषयोपसेवाम् ।
आदौ विपाक-समये कटुका नितान्त,
किंपाक पाक फल भुक्ति-मिवाङ्गभाजाम् ॥ ७

अर्थ—ससार सागर के निरूपण मे तल्लीन सन्त जन विषय-सेवा याने इन्द्रिय सुख को प्रारभ मे मधुर और परिणाम मे नितान्त कटुक

अत्यन्त गेय-रव-दत्तमना वराक ,
श्रोत्रेन्द्रियेण समवर्ति-मुख प्रयाति ॥ १

अर्थ—दूवके कोमल अकुरो को खाकर पुष्ट शरीरवाला हिरण, वन मे हरिणियो के सग विलास युक्त क्रीडा करता हुआ, अत्यन्त मधुर गीत के स्वर मे मन देकर, श्रोत्रेन्द्रिय के कारण काल के मुख मे चला जाता है ।

इन्द्रियाणा विचरता, विपयेष्वपहारिषु ।
सयमेयत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ २

अर्थ—विद्वान् को चाहिए कि विपयाकृष्ट इन्द्रियो को यत्न पूर्वक सयम मे रक्खे । जैसे कि सारथि घोडे को वश मे रखता है ।

न तथैतानि शक्यन्ते, सन्नियन्तुमसेवया ।
विषयेषु प्रजुष्टानि, यथा ज्ञानेन नित्यश । ३ "मनु"

अर्थ—विषयासक्त इन्द्रियो को, विपय विमुख करने मात्र से वास्तविक दृष्टि से वे सयत नही होते, जैसा कि नित्य ज्ञान के द्वारा उन्हे सयत बनाया जा सकता है ।

आपदा कथित पन्था , इन्द्रियाणामसयम ।
तज्जय सपदा मार्गो, येनेष्ट तेन गम्यताम् ॥ ४

अर्थ—इद्रियो के असयम को आपत्तियो का मार्ग कहा गया है और इन्द्रिय जय को सम्पदा का । आप जिसे पसन्द करें उसी से गमन करे।

अजानन् दाहार्ति विशति शलभो दीपक मुखे,
न मीनोऽपि ज्ञात्वा वडिशयुतमश्नाति पिशितम् ।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जाल जटिलान्,
न मुञ्चाम कामान् अहह विषमा कर्मगतय । ५

अर्थ—दाहकी पीडा को नही जानते हुए शलभ दीपक के मुख मे प्रवेश करता है और मछली भी काटा युक्त आटा को अनजाने ही खाती है । मगर हम सब इस विपत्तिकारी जटिल जाल को जानते हुए भी काम को नही छोडते है । हाय ! कर्म की गति बडी विषम है ।

दन्तीन्द्र-दन्त-दलनैक-विधौ समर्था,
सन्त्यत्र रौद्र-मृगराज-वधेप्रवीणा ।
आशी-विषोरग वशी-करणेऽपि दक्षा,
पञ्चाक्ष निर्जय परास्तु न सन्ति मर्त्या, ६

अर्थ—ससार मे गजराज के दातो को तोडने मे कई समर्थ है तथा भयकर सिंह को मारने मे भी कई निपुण हैं । दृष्टिविष सर्प को वश करने मे भी कई चतुर हैं किन्तु पञ्चेन्द्रियो को जीतने मे समर्थ विरले ही नर नजर आते हैं ।

ससार सागर-निरूपण दत्त चित्ता,
सन्तो वदन्ति मधुरा- विषयोपसेवाम् ।
आदौ विपाक-समये कटुका नितान्त,
किंपाक पाक फल भुक्ति-मिवाङ्गभाजाम् ॥ ७

अर्थ—ससार सागर के निरूपण मे तल्लीन सन्त जन विषय-सेवा याने इन्द्रिय सुख को आरभ मे मधुर और परिणाम मे नितान्त कटुक

कहते है। निश्चय यह किंपाक फल के भोग की तरह परिणाम मे नाश करने वाली है।

तावन्नरो भवति तत्त्वविदस्तदोषो,
मानी मनोरम-गुणो मननीय वाक्य ।
शूर समस्त जनता महित कुलीनो,
यावद्हृषीक विषयेपु न–शक्तिमेति । ८

अर्थ—मनुष्य तभी तक तत्वो का जानकार, दोप रहित, मानी, सुन्दर गुणो वाला, माननीय वचन वाला होता है । शूर और सकल–लोक–पूजित एव कुलीन भी तभी तक होता है, जबतक कि इन्द्रियो के विषयो मे अपनी शक्ति नही लगाता ।

आदित्य चन्द्र हरिशकर वासवाद्या,
शक्ता न जेतुमतिदु,खकराणि यानि ।
तानीन्द्रियाणि बलवन्ति सुदुर्जयानि,
ये निर्जयन्ति भुवने–बलिनस्त एव,

अर्थ—सूर्य, चन्द्र, विष्णु, शकर और इन्द्र आदि देवो को भी, जिनका जीतना अति दुष्कर है, उन अतिशय बलवान दुर्जय इन्द्रियो को जो जीतते है वे ही वास्तव मे पृथ्वी पर बलवान् हैं ।

उर्दू

जग जीतने से बढकर है नफ्स1 जीत लेना ।
बडी मुश्किल से काबू मे दिले-दीवाना आता है। मीर'

1 - वासना

लज्जते१-दुनिया जो सच पूछो उसी को मिल गई ।
जिसने यह समझा कि दुनिया का मजा कुछ भी नहीं ।।

सीरत२ नहीं है जिसमे वह सेहत३ फिजूल है ।
जिस गुल मे बू४ नहीं है, वह कागज का फूल है ।। 'मुल्ला'

खयाल इन्सान को हरदम रहे दिलकी सफाई का ।
नजर आता है इस आईने मे नक्शा खुदाई का ।। 'जफर'

---

१ - ससार का वास्तविक सुख २ - चारित्र्य ३ - स्वास्थ्य ४ - गध

आधि व्याधि परीतापादद्य श्वो वा विनाशिने ।
कोहि नाम शरीराय धर्मपेत समाचरेत् ।।

अर्थ—मन और शरीर के दुख एव सताप से आज या कल नाश होने वाले इस शरीर के लिए धर्म विरुद्ध-आचरण कौन करे ?

१८

मद्य–पान

संस्कृत

भवति मद्य वशेन मनोभ्रमो, भजति कर्म मनोभ्रमतो यत ।
व्रजति कर्मवशेन च दुर्गति, त्यजत मद्यमतस्त्रिविधेन भो ।

अर्थ—मद्य के वश से मनुष्य के मन मे भ्रान्ति उत्पन्न होती है फिर मनोभ्रम से वह बुरे कार्यो को करता है और दुष्कर्म के वश खराब गति को प्राप्त करता है। अत हे भव्यो ! त्रिविध योग से मद का त्याग करो ।

गलति वस्त्रमधस्तनमीक्ष्यते, सकलमन्यतया श्लथते तनु ।
स्खलति पादयुग पथिगच्छत , किमु न मद्य वशाच्छ्र्यते जन ।२

अर्थ—शरीर से नीचे का वस्त्र फिसलता है जिससे अधोभाग दिखाई पडता है और सारा शरीर कुछ और ही रूप मे शिथिल हो जाता है। रास्ते मे चलते दोनो पैर डगमगाते है इस तरह मद के वश मे पड कर मनुष्य कौनसी विपरीत दशा को नही प्राप्त करता ?

असुभृता वधमाचरति क्षणाद् वदतिवाक्यमसह्यमसूनृतम् ।
पर कलत्रधनान्यपि वाञ्छति, न कुरुते किमु मद्य मदाकुल ।३

अर्थ—नशावाज प्राणधारियो का क्षण पल मे वध कर डालता है और असह्य तथा असत्य वचन बोलता है। दूसरे के धन और स्त्री की इच्छा करता है, इस प्रकार मदाकुल आदमी क्या क्या अनर्थ नही करता ?

स्वजनमन्यजनीयति मूढधी, परजन स्वजनीयति मद्यप ।
किमथवा बहुना कथितेनभो द्वितय लोक विनाशकरी सुरा ।४

अर्थ—मद्यपान करने वाला मूढ बुद्धि अपने को पराये की तरह तथा पर जन को अपने की तरह समझता है। अधिक कहने से क्या ? यह मदिरा दोनो लोक को बिगाडने वाली है।

ख्यात भारत-मण्डले यदुकुल श्रेष्ठ विशाल पर,
साक्षाद्देव-विनिर्मिता वसुमती भूषा पुरी द्वारिका ।
एतद् युग्म-विनाशन च युगपज्जात क्षणात्सर्वथा,
तन्मूल मदिरानुदोष-जननी सर्वस्व सहारिणी ।। ५

अर्थ—भारत देश मे यदुवश परम विशाल, श्रेष्ठ एव प्रख्यात कुल था और साक्षात् देवो के द्वारा बनायी हुई पृथ्वी की भूषा रूप द्वारिका पुरी थी। किन्तु इन दोनो का एक साथ क्षण मे विनाश हो गया। इसकी जड मे सर्वस्व सहारिणी, दोष-जननी मदिरा ही प्रधान कारण कहा गया है।

१६

मास–भक्षण दोष

प्राकृत

कर-चरण-रणयरण-वयरणोवलक्खिया मारणुसा कलिज्जति ।
मसासरणेण ते चेय रक्खसारण ण भिज्जति ॥ १

अर्थ—जो हाथ, पैर, आख और मुख से उपलक्षित मनुष्य कहे जाते है, वे मास के भोजन से राक्षसो से भिन्न नही होते अर्थात् राक्षसो के समान हो जाते है ।

इय मसमसुइ सभव समुब्भव दीसमाणमसुइ च ।
को छिवइ करयलेणावि ? दूरओ भक्खरण तस्स ॥ २

अर्थ—अशुचि से उत्पन्न होने वाले और दृश्यमान् अशुचिरूप मास को हाथ से भी कोई नही छूता फिर उसके भक्षण की तो बात ही क्या है ?

रिणयमस पोसरण जो इच्छइ, परमस भक्खरण काउ ।
सो कालकूडकवलण परायरणो जीविउ महइ । ३

अर्थ—दूसरे के मास का भक्षण कर जो अपने मास को बढाने की इच्छा करता है, वह कालकूट (जहर) को खा कर जीने की इच्छा करता है।

हतूण परपाणे अप्पाण जो करेइ सप्पाण।
अप्पाण दिवसाण कएण णासेइ अप्पाण ॥ ४

अर्थ—दूसरो के प्राणो का हनन करके जो अपने को सप्राण करता है वह अल्प दिनो के सुख हेतु अपना ही नाश करता है।

संस्कृत

न भक्षयति यो मास, नच हन्यान्न घातयेत्।
तन्मित्र सर्व-भूताना, मनु स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ५

अर्थ—जो न मास खाता है, न मारता है और न मरवाता है, वह सभी प्राणियो का मित्र है, ऐसा स्वायम्भुव मनु कहते हैं।

नहि मास तृणात्काष्ठा-दुपलाद् वापि जायते।
हत्वा जन्तु ततो मास, तस्माद्दोषस्तु भक्षणे ॥ ६

अर्थ—मास, घास, लकडी या पत्थर से नही उत्पन्न होता किन्तु जन्तु को मार कर बनता है, अत मास भक्षण मे दोष है।

तिल सर्षपमात्र तु मास यो भक्षयेन्नर।
स एव नरक याति, यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥ ६

अर्थ—तिल या सरसो के बराबर भी अगर आदमी मास खाता है तो जब तक सूर्य चन्द्र है, तब तक के लिए वह नरक को प्राप्त करता है।

ना।कृत्वा प्राणिना हिसा, मासमुत्पद्यते क्वचित् ।
नच प्राणिवध स्वर्ग्यस्तस्मान्मास विवर्जयेत् ।। ७

अर्थ—जीवो की हिंसा किए बिना कही भी मास उत्पन्न नही होता और जीव हिंसा स्वर्ग योग्य नही है, अत मासको छोड देना चाहिए ।

मासादनात्प्रणश्यन्ति, देहश्री सुमति सुखम् ।
शौच सत्य यश पुण्य, श्रद्धा-विश्वास सद्गति ।। ८

अर्थ—मास खाने से देहकी शोभा, सुबुद्धि, सुख, पवित्रता, सत्य यश, पुण्य, श्रद्धा, विश्वास, और सद्गति सभी नष्ट होते है ।

स्वमास पम्मासेन, यो वर्द्धयितुमिच्छति ।
नास्नि क्षुद्रनरस्तस्मात्, स नृशसतरो नर ।। ९

अर्थ—जो अपने मास को दूसरे के मास से बढाने की इच्छा करता है, उससे बढकर दूसरा कोई क्षुद्र नही है वह अत्यन्त क्रूर नर है ।

अन्नाशने स्यात् परमाणु मात्र, प्रशक्यते शोधयितु तपोभि ।
मासाशने पर्वतराज मात्रो नो शक्यते शोधयितु महत्त्वात् । १

अर्थ—अन्न के खाने मे परमाणुभर छोटी हिंसा का दोष लगता है, जो तप से शुद्ध किया जा सकता है, किन्तु मास भोजन का पर्वतराज के समान वडादोष, वडा भयकर होने के कारण शुद्ध नही किया जा सकता । अर्थात् थोडे की तो सफाई हो सकती है किन्तु वडे दोष की सफाई कैसे हो ?

मृगान्वराकाश्चलतोऽपि तूर्णान्निरागसोऽत्यन्त विभीत चित्ता ।
येऽश्नन्ति मासानि निहत्य पापास्तेभ्यो निकृष्टा अपरे न सन्ति ।।२

अर्थ—निरपराधी, अत्यन्त भयभीत चित्त वाले, शीघ्रता से चलने वाले छोटे मृगो को मारकर जो पापी खाते है उनसे बढकर दूसरा कोई पापी नीच नही है ।

मासाशिनो नास्ति दयाऽसुभाजा,
दया विनानास्ति जनस्य पुण्यम् ।
पुण्य विना यान्ति दुरन्त दु ख,
ससार कान्तारमलभ्य पारम् ।। ३

अर्थ— मास खाने वाले को जीवो के प्रति दया नही रहती और दया के विना लोगो को पुण्य नही मिलता । पुण्य के विना मनुष्य अत्यन्त कठिन दु ख को प्राप्त कर और कभी भी ससार रूप–अरण्य का पार नही पा सकता ।

समय किसका रस पीता है ?

आदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मण ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य काल पिबति तद्रसम् ।।

अर्थ—लेना, देना और करने योग्य कर्म के शीघ्र न करने से समय उसका रस पीता है याने देरी लगाने से काम विगड जाता है ।

नाकृत्वा प्राणिना हिसा, मासमुत्पद्यते क्वचित् ।
नच प्राणिवध स्वर्ग्यस्तस्मान्मास विवर्जयेत् ।। ७

अर्थ—जीवो की हिसा किए विना कही भी मास उत्पन्न नही होता और जीव हिसा स्वर्ग योग्य नही है, अत मासको छोड देना चाहिए ।

मासादनात्प्रणश्यन्ति, देहश्री सुमति सुखम् ।
शौच सत्य यश पुण्य श्रद्धा-विश्वास सद्गति ।। ८

अर्थ—मास खाने से देहकी शोभा, सुबुद्धि, सुख, पवित्रता, सत्य यश पुण्य, श्रद्धा, विश्वास, और सद्गति सभी नष्ट होते है ।

स्वमास परमासेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात् स नृशसतरो नर ।। ९

अर्थ—जो अपने मास को दूसरे के मास से बढाने की इच्छा करता है, उससे बढकर दूसरा कोई क्षुद्र नही है वह अत्यन्त क्रूर नर है ।

अन्नाशने स्यात् परमाणु मात्र, प्रशक्यते शोधयितु तपोभि ।
मासाशने पर्वतराज मात्रो नो शक्यते शोधयितु महत्त्वात् । १

अर्थ—अन्न के खाने मे परमाणुभर छोटी हिंसा का दोप लगता है, जो तप से शुद्ध किया जा सकता है किन्तु मास भोजन का पर्वतराज के समान बडादोप, बडा भयन्कर होने के कारण शुद्ध नही किया जा सकता । अर्थात् थोडे की तो सफाई हो सकती है किन्तु बडे दोप की सफाई कैसे हो ?

मृगान्वराकाश्चलतोऽपि तूर्णान्निरागसोऽत्यन्त विभीत चित्ता ।
येऽश्नन्ति मासानि निहत्य पापास्तेभ्यो निकृष्टा अपरे न सन्ति ।।२

अर्थ—निरपराधी, अत्यन्त भयभीत चित्त वाले, शीघ्रता से चलने वाले छोटे मृगो को मारकर जो पापी खाते हैं उनसे बढकर दूसरा कोई पापी नीच नही है ।

मासाशिनो नास्ति दयाऽसुभाजा,
दया विनानास्ति जनस्य पुण्यम् ।
पुण्य विना यान्ति दुरन्त दु ख,
ससार कान्तारमलभ्य पारम् ।। ३

अर्थ— मास खाने वाले को जीवो के प्रति दया नही रहती और दया के बिना लोगो को पुण्य नही मिलता । पुण्य के बिना मनुष्य अत्यन्त कठिन दु ख को प्राप्त कर और कभी भी ससार रूप-अरण्य का पार नही पा सकता ।

समय किसका रस पीता है ?

आदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मण ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य काल पिबति तद्रसम् ।।

अर्थ—लेना, देना और करने योग्य कर्म के शीघ्र न करने से समय उसका रस पीता है याने देरी लगाने से काम बिगड जाता है ।

नाकृत्वा प्राणिना हिसा मासमुत्पद्यते क्वचित् ।
नच प्राणिवध स्वर्ग्यस्तस्मान्मास विवर्जयेत् ।। ७

अर्थ—जीवो की हिसा किए विना कही भी मास उत्पन्न नही होता और जीव हिसा स्वर्ग योग्य नही है, अत मासको छोड देना चाहिए ।

मासादनात्प्रणश्यन्ति, देहश्री सुमति सुखम् ।
शौच सत्य यश पुण्य श्रद्धा-विश्वास सद्गति ।। ८

अथ—मास खाने से देहकी शोभा सुबुद्धि सुख पवित्रता, सत्य यश पुण्य, श्रद्धा विश्वास और सद्गति सभी नष्ट होते है ।

स्वमास परमासेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात् स नृशसतरो नर ।। ६

अर्थ—जो अपने मास को दूसरे के मास से बढाने की इच्छा करता है, उससे बढकर दूसरा कोई क्षुद्र नही है वह अत्यन्त क्रूर नर है ।

अन्नाशने स्यात् परमाणु मात्र, प्रशक्यते शोधयितु तपोभि ।
मासाशने पर्वतराज मात्रो नो शक्यते शोधयितु महत्त्वात् । १

अर्थ—अन्न के खाने मे परमाणुभर छोटी हिसा का दोष लगता है, जो तप से शुद्ध किया जा सकता है किन्तु मास भोजन का पर्वतराज के समान बडादोष बडा भयकर होने के कारण शुद्ध नही किया जा सकता । अर्थात् थोडे की तो सफाई हो सकती है किन्तु बडे दोष की सफाई कैसे हो ?

मृगान्वराकाश्चलतोऽपि तूर्णान्निरागसोऽत्यन्त विभीत चित्ता ।
येऽश्नन्ति मासानि निहृत्य पापास्तेभ्यो निकृष्टा अपरे न सन्ति ।।२

अर्थ—निरपराधी, अत्यन्त भयभीत चित्त वाले, शीघ्रता से चलने वाले छोटे मृगो को मारकर जो पापी खाते हैं उनसे बढ़कर दूसरा कोई पापी नीच नही है ।

मासाशिनो नास्ति दयाऽसुभाजा,
दया विनानास्ति जनस्य पुण्यम् ।
पुण्य विना यान्ति दुरन्त दु ख,
ससार कान्तारमलभ्य पारम् ।। ३

अर्थ– मास खाने वाले को जीवो के प्रति दया नही रहती और दया के बिना लोगो को पुण्य नही मिलता । पुण्य के विना मनुष्य अत्यन्त कठिन दु ख को प्राप्त कर और कभी भी ससार रूप–अरण्य का पार नही पा सकता ।

समय किसका रस पीता है ?

आदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मण ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य काल पिबति तद्रसम् ।।

अर्थ—लेना, देना और करने योग्य कर्म के शीघ्र न करने से समय उसका रस पीता है याने देरी लगाने से काम बिगड़ जाता है ।

२०

अपमान

<u>सस्कृत</u>

पादाहत यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वररज । १ 'शिशुपाल वध'

अर्थ—पैर से आहत होते ही धूल ऊपर उठकर सिर पर चढ जाती हैं । वह उस मनुष्य से अच्छी है जो अपमानित हो कर भी शात बैठा रहता है ।

वर प्राण परित्यागो, मा मान परिखण्डनम् ।
मृत्युस्तु क्षणिका पीडा, मानखडो पदे पदे ।। २

अर्थ—प्राण जाना ठीक है किन्तु मान भग होना ठीक नही । मरने मे तो क्षणिक पीडा होती है किन्तु मान भग मे तो पद पद मे पीडा होती हैं ।

<u>हिन्दी</u>

रहिमन मोहि न सुहाय अमी पियावत मान बिन ।
वरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ।।

आव नहीं आदर नहीं, नहीं नेणा मे नेह ।
वा घर कबहु न न जाइये, अमृत बरसे मेह ।।

उर्दू

जिन्दगी जिन्दा दिली का नाम है,
मुर्दादिल खाक जिया करते हैं । "नासिख"

जो बेकस है उनको ही जालिम जमाना ।
बनाता है तीरे सितम का निशाना ।।

किसको कैसे वश में करें ?

लुब्धमर्थेन गृह्णीया स्तब्धमञ्जलि कर्मणा ।
मूर्खं छन्दानुरोधेन, याथातथ्येन पण्डितम् ।
सदभावेन हरेन्मित्र, सम्भ्रमेण तु बान्धवान ।
स्त्री भृत्यौ दानमानाभ्या दाक्षिण्येनेतराञ्जनान् ।

अर्थ—लोभी को धन देकर, अभिमानी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को इच्छा के अनुसार याने उसकी बात मानकर और पंडित को सच्ची अच्छी बात कह कर, मित्र को सद्भाव से, बन्धुओ को आदर से, दान और मान से स्त्रियो एवं सेवको को तथा चतुराई से अन्य मनुष्यो को वश मे करना चाहिए ।

२१

भावना

सस्कृत

यत्र यत्र मनो देही, धारयेत्सकल धिया ।
स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद्वापि यातितत्तत्सरूपताम् । १

अर्थ—जीव स्नेह से, द्वेष से अथवा भय से जिस किसी मे सम्पूर्ण रूप से मन को लगाता है, वही मनुष्य अन्त मे तद्रूप हो जाता है।

अमृतत्व विषयाति सदैवामृतवेदनात् ।
शत्रु मित्रत्वमायाति मित्र-सवित्ति वेदनात् । 'योग वाशिष्ठ'

अर्थ—सदा अमृत रूप मे चिन्तन करने से विष भी अमृत हो जाता है और सदा मित्र भाव से चिन्तन करने से शत्रु भी मित्र हो जाता है।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ।। ३

अर्थ—मत्र, तीर्थ, द्विज, देव, ज्योतिषी, औषध और गुरु के विषय मे जिसकी जैसी भावना रहती है, उसको वैसी ही सिद्धि मिलती है।

पृथ्वी चन्द्र नृपोमुनि कुरगडुश्चेलाति पुत्रस्तथा।
चक्री श्री भरतेश्वरश्च कपिल श्रीमारुदेवी तथा॥
आषाढो गुणसागरो रुषभृदाचार्यस्य शिष्योनवो।
भावेनैव भवाब्धि पारमगमन्नेतेऽखिला मानवा॥ ४

अर्थ—पृथ्वीचन्द्र राजा, कुरगडुमुनि, चेलातिपुत्र, चक्रीभरतेश्वर, कपिल ब्राह्मण, माता मरुदेवी' आषाढ-गुण-सागर चडरुद्र (रुषमृत्) आचार्य के शिष्य ये सभी मानव, भावना से ही ससार-सागर से पार हो गए।

षट्-खडराज्ये भरतो निमग्नस्ताम्बूलवक्त्र मविभूषणश्च।
आदर्श हर्म्ये जटिते सुरत्नैर्ज्ञान सलेभे वरभावनोऽत्र॥ ५

अर्थ—छौ खण्ड वाले राज्य मे भरत निमग्न थे और मुख मे ताम्बूल था तथा बहुमूल्य आभूषणधारी वे रत्नजटित आदर्श महल मे, भाव से ही केवल ज्ञान प्राप्त किये।

हिन्दी

जाको रही भावना जैसी
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी। "तुलसी"

२२

शौच

सस्कृत

गर्भेऽशुचौ कृमिकुलैर्निचिते शरीर
यद्वर्धित मलरसेन नवेह मासान् ।
वर्चो गृहे कृमिरिवाति-मलावलिप्त,
शुद्धि कथ भवतितस्य जल-प्लुतस्य ॥ १

अर्थ—कृमि समुदाय से युक्त अपवित्र गभ वास मे नौ महीनो तक मल रस से इस शरीर को बढाया, तो भला ! मलगृह से अत्यन्त मल लिप्त कीडे की तरह इस जीव को जल में डुबाने से शुद्धि कैसे हो सकती है ?

ससार सागरमपारमतीत्यपूत,
मोक्ष यदि व्रजितुमिच्छत मुक्तबाधम् ।
तज्ज्ञान-वारिणि विधूत-मले मनुष्या,
स्नान कुरुध्वमपहाय जलाभिषेकम् ॥ २

अर्थ—इस अपार ससार सागर को पार कर यदि बाधा रहित पवित्र मोक्ष को जाना चाहते हो तो ऐ मनुष्यो ? जलाभिषेक को छोडकर निर्मल ज्ञान जल मे डुबकी लगाओ अर्थात् ऐसा स्नान करो तो भवसागर को पार कर सकोगे ।

तीर्थाभिषेक करणाभिरतस्य बाह्यो,
नश्यत्यय सकल देह मलो नरस्य ।
नान्तर्गत कलिलमित्यवधार्य सोऽन्त-
श्चारित्र वारिणि निमज्जति शुद्ध हेतो ॥ ३

अर्थ—तीर्थ स्नान से मनुष्यो का बाहरी शरीर का सब मल नष्ट होता है, किन्तु अन्तर का मैल नष्ट नही होता, ऐसा जानकर आत्म शुद्धि के लिए भव्य जन चारित्र जल मे स्नान करते हैं ।

चित्तमतर्गत्त दुष्ट तीर्थस्नानेन शुद्ध्यति ।
शतधाऽपि जलैर्धौत, सुराभाण्डमिवाशुचि ॥ ४

अर्थ—शरीर के भीतर रहने वाला दुष्ट मन तीर्थ स्नान से शुद्ध नही होता । जैसे सौबार जल से धोया जाने पर भी मदिरा का पात्र अपवित्र ही रहता है ।

सर्वेषामेव शौचानामर्थं शौंच परस्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचि, नं मृद्वारिशुचि शुचि । ५

अर्थ—सभी पवित्रताओ मे धन की पवित्रता श्रेष्ठ कही गई है । जो धन के मामले मे पवित्र है याने न्याय नीति पूर्वक अर्थ उपार्जन करता है वही पवित्र है । किन्तु मिट्टी और पानी द्वारा जो पवित्रता की जाती है, वह पवित्रता नही है ।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मन सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्या भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।। ६

अर्थ—शरीर जल से शुद्ध होता, मन सत्य से शुद्ध होता आत्मा विद्या और तप से एव बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है ।

किसका सग करें ?

सङ्ग सर्वात्मना त्याज्य स चेत्यक्तुं न शक्यते ।
स सद्भि सहकतव्य सता सङ्गोहि भेषजम् ।

अर्थ—सब तरह से सग को छोड देना चाहिए और यदि वह न छोडाजाय तो सज्जनो का सग करना चाहिए । क्योकि श्रेष्ठो का सग औषधि रूप है ।

२३

धैर्य

प्राकृत

वुड्ढसहावो णवजोव्वणे वि धीराण सुदरो होइ ।
इयराण पुण वुड्ढत्तणे वि णिव्वडइ तारुण्ण ॥ १

अर्थ—धीर पुरुषो का तरुणाई मे वृद्ध जैसा स्वभाव सुन्दर होता है । अधीर पुरुषो को वृद्ध वय मे भी तरुण का सा चचल एव उत्तेजित स्वभाव होता है ।

सण्णहण दुग्ग आउह च कज्ज कुणति धीरस्स ।
धीरत्तणरहियाण णाराणमप्पवहणिमित्त ॥ २

अर्थ—युद्ध-सामग्री, दुर्ग और शस्त्र आदि धैर्यवान् पुरुष के ही काम मे आते है । जिन व्यक्तियो मे धैर्य नही है उनके लिये तो उनके स्वय के शस्त्र ही मृत्यु के निमित्तवन जाते है ।

सस्कृत

रत्नै महार्हैस्तुतुषु र्न देवा, न भेजिरे भीम-विषेण भीतिम् ।
सुधा विना न प्रययु विराम, न निश्चितार्थाद् विरमन्तिधीरा.। १

अर्थ—वेशकीमती रत्नो को पाकर भी देव समुद्र मन्थन से विरत नही हुए और न उससे निकलने वाले भयानक विप से डर कर ही अपने प्रयत्न से रुके। जव तक अमृत हाथ नही आया तव तक उन्होने विश्राम नही लिया। इससे सिद्ध होता ह कि धीरजन अपने लक्ष्य पर पहु चे विना विश्राम नही करते है।

कान्ता कटाक्ष विशिखा न दहन्ति यस्य,
चित्त न निर्दहति कोप कृशानुताप ।
कर्षन्ति भूरि-विषयाश्च न लोभ पाशै
लोकत्रय जयति कृत्स्नमिद स धीर । २

अर्थ—नारियो के कटाक्षरूपी तीर जिसके हृदय को नही वेधते, क्रोधाग्नि जिसके चित्त को नही जलाती और इन्द्रियो के प्रचुर विषय जिसके चित्त को लोभ जाल मे उलझा कर नही खीचते वही धीर पुरुष त्रिलोक विजयी होता है।

उर्दू

सब्र१ से बढकर मुसीबत मे कोई हामी नही।
यह सिफत२ पैदा हो जिसमे, उसने कुछ खामी नहीं॥ आलम

होते हैं बड़े किस्मत के धनी, जो यह सदमे३ सह जाते हैं।
तूफाने४ हवादस मे वर्ना अच्छे अच्छे बह जाते हैं॥
"साकिब"

१ - धैर्य २ - गुण ३ - दुख ४ - विपत्ति की आंधी

तदबीर ही तेरी ना[1] क़िस थी, तकदीर को तू इल्जाम न दे।
कर सब्र जरा कारे-मुश्किल, सब वक्त पे आसा होते हैं॥
"अलम"

मुसीबतो मे न हार हिम्मत, नजर मे रख यह उसूले[2]-फितरत।
जो बादे-[3]शब इक सहर[4] भी होगी, तो बादे[5] गम इक खुशी मिलेगी॥
"अख्तर"

नहीं इसके बराबर नेमतो मे कोई नेमत है।
कोई दिल से मेरे पूछे, जो गम खाने मे लज्जत है॥ "अदीब"

---

१ - दोषयुक्त २ - प्राकृतिक नियम ३ - रात के बाद ४ - प्रभात ५ - दुख के बाद

सास का पिंजरा किसी दिन टूट जायेगा।
हर मुसाफिर राह मे ही छूट जायेगा।
हर किसीको प्यार करलो प्यार लेलो सबका।
क्या पता कब प्यार का घट फूट जायेगा॥
—रुबाई

अर्थ—वेशकीमती रत्नो को पाकर भी देव समुद्र मन्थन से विरत नही हुए और न उससे निकलने वाले भयानक विष से डर कर ही अपने प्रयत्न से चूके। जब तक अमृत हाथ नही आया तब तक उन्होने विश्राम नही लिया। इससे सिद्ध होता है कि धीरजन अपने लक्ष्य पर पहुचे विना विश्राम नही करते है।

कान्ता कटाक्ष विशिखा न दहन्ति यस्य,
चित्त न निर्दहति कोप कृशानुताप ।
कर्षन्ति भूरि-विषयाश्च न लोभ पाशै
लोकत्रय जयति कृत्स्नमिद स धीर । २

अर्थ—नारियो के कटाक्षरूपी तीर जिसके हृदय को नही बेधते, कोधाग्नि जिसके चित्त को नही जलाती और इन्द्रियो के प्रचुर विषय जिसके चित्त को लोभ जाल मे उलझा कर नही खीचते वही धीर पुरुष त्रिलोक विजयी होता है।

उर्दू

सब्र१ से बढकर मुसीबत में कोई हामी नहीं।
यह सिफन२ पैदा हो जिसमे, उसमे कुछ खामी नहीं ।। आलम

होते हैं बडे किस्मत के धनी, जो यह सदमे३ सह जाते हैं।
तूफाने४ हवादस में वर्ना अच्छे अच्छे बह जाते हैं ।।
"साकिब"

१ - धैर्य २ - गुण ३ - दुख ४ - विपत्ति की आंधी

तदबीर ही तेरी ना[1] किस थी, तकदीर को तू इल्जाम न दे।
कर सब्र जरा कारे-मुश्किल, सब वक्त पे आसा होते हैं॥
"अलम"

मुसीबतो मे न हार हिम्मत, नजर मे रख यह उसूले[2]-फितरत।
जो बादे-[3]शब इक सहर[4] भी होगी, तो बादे[5] गम इक खुशी मिलेगी॥
"अख्तर"

नहीं इसके बराबर नेमतो मे कोई नेमत है।
कोई दिल से मेरे पूछे, जो गम खाने मे लज्जत है॥ "अदीब"

---

१ – दोपयुक्त २ - प्राकृतिक नियम ३ - रात के बाद ४ - प्रभात ५ - दुख के बाद

सास का पिजरा किसी दिन टूट जायेगा।
हर मुसाफिर राह में ही छूट जायेगा।
हर किसीको प्यार करलो प्यार लेलो सबका।
क्या पता कब प्यार का घट फूट जायेगा॥
—रुबाई

२४

शोक

प्राकृत

सोएण सम ण वसति देव ! लच्छी जसो य कित्ती य ।
सोक्ख च रई लीला, विसएसु मणो णिरावरणो ।। १

अर्थ—हे देव ! शोक के साथ लक्ष्मी, यश, कीर्ति, सुख, रति और क्रीडा नही हरती । शोक-चिन्ता गस्त का मन विषओ मे निरावरण रहता है ।

धीरत्तण पि छड्डुति, देति दुक्खस्स णवरमप्पाण ।
कज्जाऽकज्ज ण मुणति सोय गहिया जए पुरिसा ।। २

अर्थ—धीरता का त्याग करते, आत्मा को दु ख के अर्पण करते और शोक ग्रसित मनुष्य जगत् मे कृत्य-अकृत्य को नही जान पाते ।

ते णवर महापुरिसा जे य अणज्जेण सोयपसरेण ।
ण वसीकया कयाइ वि जाणिय ससार परमत्था ।। ३

अर्थ—वे महापु ष है जो ससार के परमार्थ को जान कर अनार्य शोक के प्रसार से कभी वश नही किये गये ।

संस्कृत

पुरुषस्य विनश्यति येन सुख, वपुरेति कृशत्वमुपेत्य वलम् ।
मृतिमिच्छति मूर्च्छति शोकवशस्त्यजतैनमतस्त्रिविधेन बुधा । १

अर्थ—जिस शोक से मनुष्य का सुख नष्ट होता और शरीर क्षीण होता तथा निर्वलता प्राप्त होती है। शोकवश मनुष्य मरना चाहता एव मूर्च्छित होता है। अत विद्वान् इसे मन, वचन एव कायिक तीनो प्रकार के योग से छोड दे।

क्व जप क्व तप क्व सुख क्व शम
क्व यम क्व दम क्व समाधि विधि.
क्वधन क्व बल क्व गृह क्व गुणो
वत शोक वशस्य नरस्य भवेत् । २

अर्थ—जप कहा, तप कहा, सुख कहा, शान्ति कहाँ, सयम कहा, इन्द्रिय निग्रह एव समाधि कहा ? कहा धन, कहा बल, कहा घर और कहा गुण ? अर्थात् चिन्ताशील मनुष्य के किसीका कोई ठिकाना नही।

सकल सरस सुखमेति यथा, सकल पुरुषो मृतिमेतितथा।
मनसेति विचिन्त्य बुधो न शुच, विदधाति मनागपितत्त्वरुचि ।३

अर्थ—जैसे समस्त सरस सुख को मनुष्य प्राप्त करता है वैसे ही शोक वश मनुष्य मृत्यु को भी प्राप्त करता है। ऐसा विचार कर तत्त्व मे रुचि रखने वाले विद्वान्, मनुष्य कुछ भी शोक नही करते।

पथि पान्थगणस्य यथाव्रजता, भवति स्थितिरस्थितिरेवतरौ।
जननाध्वनि जीवगणस्य तथा, जनन मरण च सदैव कुने ॥ ४

अथ—जैसे मार्ग मे चलते हुए यात्रियो का वृक्ष के नीचे ठहरना एव जाना–चलना होता है, वैसे ही जन्म मार्ग पर जीवो का विभिन्न कुलो मे जन्म म-रण होता रहता ह। इसमे शोक करने जैसी कोई बात नही। जैसे पक्षियो का रैनबसेरा है वैसे कुल को भी रैन बसेरा समझना चाहिए।

अनुशोचन मस्त-विचारमना, विगतस्य मृतस्य च य कुरुते।
स गते सलिले तनुते वरण, भुजगस्य गतस्य गति क्षिपति ॥ ५

अर्थ—जो कोई गई वस्तु या मृत व्यक्ति के लिए शोक करता है, वह पानी मे गए हुए सर्प ग्रहण का व्यर्थ सहारा लेता है। अर्थात् शोच सर्वथा व्यथ है, उससे कुछ लाभ नही।

शोको नाशयते धैर्य, शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्व, नास्ति शोक समो रिपु ॥ ६

अर्थ—शोक धैर्य को नष्ट करता है, शोक शास्त्र ज्ञान को भुला देता, इतना ही नही शोक सब कुछ नष्ट कर देता है अत शोक के समान दूसरा कोई शत्रु नही है।

हिन्दी

फिकर सभी को खात है, फिकर सभी का पीर।
फिकर का फाका करे, उसका नाम फकीर ॥

उर्दू

शादियो गम मे जहा के, एक से दस का है फर्क।
ईद के दिन हँसिए तो, दस दिन मुहर्रम रोइए ॥ "अकबर"

दुनिया की महफिलों से, उकता गया हूँ मैं ।
क्या लुत्फ अ जुमन१ में, जब दिल ही बुझ गया हो ।।

किसी के काम न आए, वह आदमी क्या है ।
जो अपनी फिक्र में गुजरे वह जिन्दगी क्या है ।। "अज्ञात"

अय्याम मुसीबत के तो काटे नहीं कटते ।
दिन ऐशकी घड़ियों में गुजर जाते हैं कैसे ।।

रगें दुनिया देखकर, घबरागया अपना तो जी ।
भाई को भी भाई से भी, इस दौर में उल्फत नहीं ।।

शमा जरा सोच तो, यह भी कोई जिन्दगी है ?
शाम हुई जला दिया, सुबह हुई बुझा दिया ।।

बेगाने जो शुरू से हैं, उनका जिक्र क्या ।
अपने भी गैर हो गए इसका मलाल२ है ।। "अस्म"

है हुस्न भी इक आफत, बागे जहा में ऐ गुल ।
किस किस से तू बचेगा, गुलचीं३ है बागबा है ।। "मुल्ला"

ऐ शमम ! तेरी उम्रे तबीई४ है एक रात ।
रोकर गुजार या इसे हँसकर गुजार दे ।।

---

१ - महफिल २ - दुख ३ - फूल चुनने वाला ४ - जीवन काल

२५

द्यूत

प्राकृत

सजणेय परिजणे वा देसे सव्वत्थ होइ णिल्लज्जो।
माया वि ण विस्सास, वञ्चइ जूय रमतस्स ।। १

अर्थ—जूआ खेलने वाला स्वजन मे परिजन मे, अपने देश मे और सभी जगह निर्लज्ज हो जाता है। जूआ मे आसक्त मनुष्य का विश्वास उसकी माता भी नही करती।

णय भुजइ आहारणिद्दं ण लहेइ रत्ति दिण्णति।
कत्थ विण कुणेइ रइ अत्थइ चिताउरो णिच्च। २

अर्थ—जूआ मे आसक्त मनुष्य खाने की परवाह नही करता और न रात दिन नींन्द ही लेता है। किसी भी काम मे उसका मन नही लगता और वह हर क्षण चिन्तातुर रहता है।

सस्कृत

पत्य शौच शमशर्मवर्जिता, धर्मकाम धनतो बहिष्कृता।
द्यूत दोष मतिना विचेतना, क न दोषमुपचिन्वते जना

अर्थ—सत्य,शौच, शान्ति और सुख से रहित तथा धर्म, काम एव धन से बहिष्कृत चैतन्यरहित मनुष्य जूए के दोष से दूषितबुद्धि होकर किन दोषो को नही प्राप्त करता है ? अर्थात् जूए से सब कुछ नष्ट होता है ।

सत्यमस्यति करोत्यसत्यता, दुर्गतिनयति हन्ति सद्गतिम् ।
धर्ममत्ति वितनोति पातक, द्यूतमत्र कुरुतेऽथवा न किम् ॥ २

अर्थ—द्यूत सत्य को हटाकर असत्य को बढाता है और सद्गति नाश करके दुर्गति को प्राप्त कराता, धर्म को खाकर पाप का विस्तार करता है, इस तरह ससार मे जूआ क्या क्या नहीं करता है ?

द्यूत नाशित धनो गताशयो मातृवस्त्रमपि योऽपकर्षति ।
शीलवृत्ति कुल नीति दूषण किं न कर्म कुरुते स मानव ॥ ३

अर्थ—जूए से नष्ट धन वाला व्यक्ति विवेकहीन होकर माता का वस्त्र तक खीच लेता है, वह मनुष्य शील, जीविका, वश एव नीति को दूषित करने वाला कौनसा कर्म नही करता ? अर्थात् बुरे से बुरे कर्म करने पर उतारु हो जाता है ।

तावदत्र पुरुपा विवेकिनस्तावदेति हि जनेषु पूज्यताम् ।
तावदुत्तम गुणा भवन्ति च, यावदक्षरमण न कुर्वते ॥ ४

अर्थ—इस ससार मे मनुष्य तभी तक विवेकशील है और तभी तक मनुष्यो मे पूजनीय है एव तभी तक उत्तम गुणो वाला है, जब तक कि वह जूए मे रमण नही करता ।

नास्ति द्यूत सम पाप, नास्ति द्यूत समोरिपु ।
पाण्डवा. प्रौढ पुण्याश्च, प्राप्ता दुख तु द्यूतत ॥ ५

अर्थ—जूए के समान और कोई पाप नहीं है और न जूए के समान कोई दूसरा शत्रु ही है। अत्यधिक पुण्यवाले पाण्डव भी जूए के प्रभाव से अत्यधिक दु ख पाए।

विषाद कलहो राटि, कोपो मान श्रमो भ्रम ।
पैशुन्य मत्सर शोक सर्वे द्यूतस्य बान्धवा ॥ ६

अर्थ—विषाद, कलह, रार—लडाई, क्रोध, मान, श्रम, सशय, पिशुनता, ईर्ष्या, और शोक ये सभी जूए के बान्धव है।

द्यूत हि सर्वथा त्याज्यम्, प्राज्ञै बुद्धि-विशालिभि ।
नरक प्राप्यते द्यूताद्, द्यूताद् तिर्यञ्चता भवेत् ॥ ७

अर्थ—विशाल बुद्धिवाले विद्वानो ने जूए को सर्वथा त्यागने योग्य कहा है। द्यूत से नरक प्राप्त होता और द्यूत से तिर्यञ्च योनि, पशु योनि मिलती है।

●●

कुदरत को नापसन्द है सख्ती जवान मे।
पैदा हुई न इसलिए हड्डी जवान मे।

२६

वेश्या

प्राकृत

अमुणिय किच्चा-ऽकिच्चाइ विमुक्क मज्जाय लज्जाओ ।
परिवज्जियधम्मसन्ना-वज्जणिज्जा सया वेस्सा ।

अर्थ—कर्तव्य अकर्तव्य को नही जानने वाली, लज्जा और मर्यादा रहित धर्म भावना से शून्य, वेश्या सदा पडितजन के लिये वर्जनीय कही गई है।

सस्कृत

मद्य माम मलदिग्धमशौच, नीच लोक मुख चुम्बन दक्षम् ।
यो हि चुम्बति मुख गणिकाया, नास्ति तस्यसदृशोऽतिनिकृष्ट ॥१

अर्थ—मद्य मास और मल से अपवित्र और नीच लोगो द्वारा मुख चुम्बन कराने मे निपुण वेश्या का जो मुख चुम्बन करता है, उससे बढकर ससार मे कोई दूसरा नीच नही है।

रागमीक्षण युते तनुकम्प बुद्धि-सत्व-जन वीर्य विनाशम् ।
या करोति कुशला , त्रिविधेन, ता त्यजन्ति गणिका मदिरेव २

अर्थ—जो देखने पर मन मे राग जगादेती और शरीर मे कपन उत्पन्न कर देती तथा मनुष्य के बल वीर्य और बुद्धि का नाश करती है, कुशल मनुष्य, उस वेश्या को, तीन प्रकार से, मदिरा की तरह छोड देते है ।

सत्य-शौच-शम-सयम-विद्या, शील-वृत्त गुण-सत्कृति लज्जा ।
या क्षिपन्ति पुरुषस्य समस्तास्ता बुध कथमिहेच्छति वेश्या । ३

अर्थ—सत्य शौच, शाति, सयम, विद्या, ब्रह्मचर्य आदि गुण, और सत्कृति तथा लज्जा को जो खीच लेती है, विद्वान् ऐसी वेश्याओ को क्यो पसन्द करेगे ?

एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-
विश्वासयन्ति पुरुषनच विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशील समन्वितेन,
वेश्या , श्मशानघटिकाइव वर्जनीया ॥ ४

अर्थ—ये धन के लिए हँसती और रोती है, पुरुष को विश्वास दिलाती हैं किन्तु स्वय विश्वास 'नही करती' । अत उत्तम कुल शील युक्त नरो के द्वारा वेश्या श्मशान घट के तुल्य छोडने योग्य है ।

जननी जनको भ्राता, तनयस्तनया स्वसा ।
न सन्ति वल्लभास्तस्य, गणिका यस्य वल्लभा ॥ ५

अर्थ—वेश्या जिस व्यक्ति की प्रिय बन जाती है उसके मा बाप, भाई पुत्र, पुत्री और वहन ये कोई भी प्रिय नही होते ।

वेश्याऽसौ मदन ज्वाला, रूपेन्धन समेधिता ।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते, यौवनानि धनानि च ।६

अर्थ—वेश्या सुन्दरता रूपी ईन्धन से जलती हुई प्रचण्ड काम की ज्वाला है । जिसमे कामी पुरुष अपने यौवन और धन की आहुति देते है ।

दर्शनाद्धरते चित्त', स्पर्शनाद्धरते बलम् ।
मैथुनाद्धरते वीर्य, वेश्या प्रत्यक्षराक्षसी । ७

अर्थ—जो देखने से चित्त को हरण करती, छूने से बल को एवं सगम से वीर्य को हरलेती है, वह वेश्या प्रत्यक्ष राक्षसी सम है ।

तावदेवदयित कुलजोऽपि-यावदर्पयति भूरिधनानि ।
येक्षुवत्त्यजति निर्गतसार, तत्र हा किमु सुख गणिकायाम् ।। ८

अर्थ—श्रेष्ठ कुलोत्पन्न मनुष्य भी तब तक प्रेमी होता है जब तक कि वह प्रचुर धन वेश्या को देता रहता है । फिर रस निकले हुए गन्ने की तरह वह प्रेमी पुरुषो को छोड देती है । भला ! ऐसी स्वार्थान्ध वेश्या मे कौन सा सुख रक्खा है ?

तपो व्रत यशो विद्या, कुलीनत्व दमो वय ।
छिद्यन्ते वेश्यया सद्य , कुठारेण लता यथा ।। ९

अर्थ—तप, व्रत, यश, विद्या, कुलीनता, दम, अवस्था, वेश्या के द्वारा ये शीघ्रही कट जाते है, जैसे कुठार से लता ।

अशुचे मंन्दिर वेश्या, वेश्या धर्म विनाशिनी ।
धन हानिकरा वेश्या, वेश्या कीर्ति विनाशिका ॥ १०

अर्थ—वेश्या अपवित्रता का घर और धर्म विनाशिनी है, धन की हानि करने वाली भी है, तथा वेश्या कीति विनाशिका भी है ।

हिन्दी

वेश्या है अवगुणी भरी सब दोषो की सिन्धु ।
अल्प दोष वर्णन किए, लखो सिन्धु मे बिन्दु ॥

गनिका कनिका अगिन की, रूप समिध मजबूत ।
होम करत कामी पुरुष, धन योवन आहूत । १

आत्मा परमात्मा मे कर्म का ही भेद है ।
काट दे गर कर्म को तो फिर भेद है न खेद है ।

२७

तृष्णा

प्राकृत

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह ।
पडिपुण्णं नालमेगस्स, इइ विज्जा तव चरे ॥ १ उत्त०

अर्थ—चावल एवं जौ आदि धान्यो तथा सुवर्ण और पशुओ से परिपूर्ण यह समूची पृथ्वी भी एक तृष्णाशील को तृप्त नही कर सकती—यह जानकर सयम मे लीन रहना चाहिए ।

भव-तण्हा लया वुत्ता, भीमा भीम फलोदया ।
तमुच्छित्तु जहा नाय, विहरामि महामुणी ॥ २ उत्त०

अर्थ—ससार-तृष्णा एक भयकर लता है, जिसके फल भी बडे भयकर है । हे महामुने ! मै उसलता का उच्छेद कर सुख पूर्वक विचरण करता हूँ ।

तण्हाभिभूयस्स अदत्त हारिणो, भावे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामोस वड्ढइ लोभदोसा तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से । ३ उ ३१

अर्थ—तृष्णा से व्याकुल मनुष्य पदार्थों के परिग्रह-संग्रह मे अतृप्त बना हुआ दूसरे का अदत्त हरण करता और लोभजन्यदोष कपट की वृद्धि करता है, फिर भी दु ख से विमुक्त नही होता ।

कसिणंपि जो इम लोय, पडिपुण्ण दलेज्ज इक्कस्स ।
तेणावि से ण संतुस्से, इह दुप्पूरए इमे आया ।। ४

अर्थ—धन धान्य से भरा हुआ यह समग्र विश्व भी यदि किसी एक व्यक्ति को दे दिया जाय, तब भी वह उससे सतुष्ट नही हो सकता । इस प्रकार यह तृष्णा बडी दुष्पूर है ।

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई ।
दो मास कणय कज्ज, कोडीए वि न निट्ठिय ।। ५

अर्थ—ज्यो ज्यो लाभ होता है, त्यो त्यो लोभ बढता है । लाभ से लोभ बढता है ।दो माशा सोने के लिये जानेवाला ब्राह्मण, करोडो स्वर्ण मुद्राओ से भी पूर्ण मनोरथ नही हो सका ।

सस्कृत

वयमिह परितुष्टा वल्कलै-स्त्व दुकूलै
समइह परितोषोनिर्विशेषो विशेष
सतु भवति दरिद्रो यस्यतृष्णा विशाला,
मनसिहि परितुष्टे कोर्थवान् को दरिद्र । १

अर्थ—हेराजन् ! हम यहा वल्कल से सतुष्ट है और आप सुन्दर वस्त्रो से । यहा हम दोनो बराबर सतुष्ट है, कोई किसी से कुछ कम वेश नही । दरिद्र तो वही होता है जिसकी तृष्णा बडी है, मन मे सतोष आने पर कौन धनवान है और कौन दरिद्र है ? अर्थात् कोई नही ।

भ्रान्त देशमनेक-दुर्ग-विषम प्राप्त न किञ्चित् फलम्,
त्यक्त्वा जाति-कुलाभिमानमुचित सेवा कृता निष्फला ।
मुक्त मान-विवर्जित पर-गृहे साशङ्कया काकवत्,
तृष्णे ! दुर्मति-पाप कर्म-निरते, नाद्यापि सतुष्यसि । २
'भर्तृहरि"

अर्थ—अत्यन्त दुर्गम एव विषम देशो का भ्रमण किया मगर कुछ भी फल नही मिला । जाति और कुलाभिमान को छोडकर लोगो की उचित सेवा की मगर वह भी निष्फल गई । कौए की तरह मान रहित होकर पर घर मे साशकित हो भोजन किया, इस तरह दुर्बुद्धि और पाप कर्म मे लीन कराने वाली हे-तृष्णे ! क्या तू अब भी सतुष्ट नही होती ?

खलोल्लापा सोढा कथमपि तदाराधन परै,
निगृह्यान्तर्बाष्प, हसितमपि शून्येन मनसा ।
कृतश्चित्त स्तम्भ, प्रहसित-धियामञ्जलिरपि,
त्वमाशे मोघाशे, किमपरमतो नर्तयसि माम् । ३ "भर्तृहरि"

अर्थ—दुष्टजनो की सेवा करते हुए हमने किसी तरह उनके कटुवचन भी सहे, भीतर मे आसुओ को रोककर शून्य मन से हसे, हसने वालो के आगे मन को रोककर हाथ भी पसारा, हे तृष्णे ? हमे इससे अधिक अब तू क्यो नचाती है ?

तृष्णे देवि नमस्तुभ्य, धैर्य-विप्लव-कारिणी ।
विष्णुस्त्रैलोक्य-पूज्योऽपि यत्त्वया वामनीकृत । ४ 'योगाशिष्ठ'

अर्थ—हे धैर्य नाशिनि तृष्णे ! तुम्हे नमस्कार है, जो त्रिलोक पूज्य विष्णु को भी तुमने वामन बनाके छोडा ।

आशाया ये दासास्ते. दासा सर्व-लोकस्य ।
आशा येषा दासी, तेषा दासायते लोक । ५

अर्थ—जो आशा-तृष्णा का दास है वह समस्त जगत का दास है और आशा-तृष्णा जिसकी दासी है उसका समस्त लोक दास है ।

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा, नित्योद्वेगकरी स्मृता ।
अधर्म-बहुला चैव, घोरा पापानुबन्धिनी ।। ६

अर्थ—तृष्णा अत्यधिक पापवाली, नित्य उद्वेग बढाने वाली, अधर्म प्रधान तथा भयकर पाप का बध करने वाली है ।

जीर्य्यन्ति जीर्य्यत केशा, दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यत ।
जीर्य्यंते चक्षुषी श्रोत्रे, तृष्णैका तरुणायते । ७

अर्थ—बुढापा आने पर केश पक जाते है और बुढापे मे दात भी झड जाते है, आख और कान भी कमजोर हो जाते है । किन्तु एक तृष्णा ही है जो तरुणी की तरह बनी रहती है ।

सप्तैतानि न पूर्यन्ते, पूर्यमाणान्यनेकश ।
ब्राह्मणोऽग्निर्यमोराजा, पयोधि रुदर गृहम् ।। ८

अर्थ—ये सातो अनेक तरह से भरे जाने पर भी नही भरते, ब्रह्मण१, अग्नि२, यम३, राजा४, समुद्र५, पेट६, और घर७ ।

भोगानभुक्तावयमेवभुक्ता-स्तपो न तप्त वयमेवतप्ता ।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेवजीर्णा ।। ९

अर्थ—भोग नही भोगा बल्कि हम सब स्वय भोगे गए, तपस्या नही तपी वरन हम सब ही तपे, समय नही गया बल्कि हम सब ही गए तृष्णा बूढी न हुई, बल्कि हम सब ही वृद्ध हो गये ।

वलिभिर्मुखमाक्रान्त पलितैरंकित शिर,
गात्राणि शिथिलायन्ते, तृष्णैका तरुणायते । १०

अर्थ—वलिकी सिकुडनो मे मुह व्याप्त होगया, शिर के बाल सफेद होगए, अग सब ढीले पड गए, पर केवल एक तृष्णा तरुण होती जा रही है।

अन्तस्तृष्णोपतप्ताना, दावदाहमय जगत् ।
भवत्यखिल जन्तूना यदन्तस्तद्वहि स्थितम् । ११

अर्थ—तृष्णा से तप्त अन्त करण वालो को यह जगत् दावानल की तरह प्रतीत होता है। क्योकि सब प्राणियो के जो अन्तर मे होता है, वही बाहर मे भी होता है।

हिन्दी

मै या पूरनब्रह्म, यदि चाह न होती बीच । 'रहीम'

उर्दू

दिल पाक न हो जब तक, दुनिया की तमन्ना से ।
क्या काम निकलता है, तसबीह[1] व मुसल्ला[2] से । 'आबाद'

---

1 माला, 2 नमाज

पृथिव्या त्रीणि रत्नानि, जलमन्न सुभाषितम् ।
मूढै पाषाण-खण्डेषु, रत्न-सज्ञा विधीयते ॥

अर्थ—पृथ्वी मे तीन ही रत्न है जल, अन्न और सुभाषित।
मूढो ने पत्थर के टुकडो मे रत्न नाम दिया है

प्रकीर्णक

- प्राकृत-सूक्ति
- संस्कृत-सूक्ति
- उर्दू-सूक्ति

पृथिव्या त्रीणि रत्नानि, जलमन्न सुभाषितम् ।
मूढै पाषाण-खण्डेषु, रत्न-सज्ञा विधीयते ॥

अर्थ—पृथ्वी मे तीन ही रत्न है जल, अन्न और सुभाषित ।
मूढो ने पत्थर के टुकडो मे रत्न नाम दिया है

प्रकीर्णक

- प्राकृत-सूक्ति
- संस्कृत-सूक्ति
- उर्दू-सूक्ति

१

प्राकृत–सूक्ति

– एकान्तवादी –

सय सय पससता, गरहता परवय ।
जे उ तत्थ विउस्सन्ति, ससार ते विउस्सिया । १ 'सूत्र कृताग

अर्थ—जो अपने मत की प्रशसा और पर मत की निन्दा करने मे ही अपना पाण्डित्य दिखाते है, वे एकान्तवादी ससार चक्र मे भटकते रहते हैं ।

– पर मे आत्म दर्शन –

तुमसि नाम त चेव ज हतव्व ति मन्नसि
तुमसि नाम त चेव ज अज्जावेयव्व ति मन्नमि ।
तुमसि नाम त चेव ज परियावेयव्व ति मन्नसि । २ आचा०

अर्थ—जिसे तू मारना चाहता है, वह तूही है । जिसे तू शासित करना चाहता है, वह तूही है । जिसे तू परिताप देना चाहता है, वह तूही है । (यह आत्मवत् बुद्धि अहिंसा का मूलाधार है) ।

— अक्रियावादी —

भणता अकरेन्ता य, बंध मोक्ख पइण्णिणो ।
वायावीरियमेत्तेण, समासासेन्ति अप्पय ॥ ३ उत्त०

अर्थ—जो केवल बोलते है, करते कुछ नही, वे बन्ध मोक्ष की बात करने वाले दार्शनिक केवल वाणी के बल पर ही अपने आपको झूठे आश्वस्त करते हैं ।

— दु ख रूप ससार —

जन्म दुक्ख जरा दुक्ख, रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खोहु ससारो, जत्थ कीसन्ति जतुणो ॥ ४

अर्थ—ससार मे जन्म का दुःख है जरा, रोग और मृत्यु का दु ख है, चारो ओर दु ख ही दु ख है । आश्चर्य है कि इस दु खमय ससार मे प्राणी, निरन्तर क्लेश पारहे हैं ।

— सारणादि रहित-सघ —

जहि णत्थि सारणा[1] वारणा य[2] पडिचोयणा[3] य गच्छम्मि ।
सोउ अगच्छो गच्छो, सजम-कामीण मोत्तव्वो ॥ ५ बृह० भा०

अर्थ—जिस सघ मे न सारणा है, न वारणा है और न प्रतिचोदना है, वह सघ सघ नही है । सयमाकाक्षी को वैसा गच्छ छोड देना चाहिए ।

— सज्जन-सग —

एगागिस्स हि चित्ताइ, विचित्ताइ खणेखणे ।
उप्पज्जति विलीयते, वसेव सज्जणे जणे ॥ ६ बृह भा

१- उचित कार्य की सूचना २ - अकर्तव्य का निषेध ३ - भूल होने पर शिक्षा

अर्थ—एकाकी रहने वाले साधक के मन मे प्रतिक्षण नाना प्रकार के विकल्प उत्पन्न एव विलीन होते रहते है। अत. सज्जनो की सगति मे रहना ही श्रेष्ठ है।

– मोक्ष के उपाय –

दोसा जेण निरुभति, जेण खिज्जति पुव्वकम्माइ ।
सो सो मोक्खोवाओ, रोगावत्थासु समण व ।। ७ नि भा वृ भा

अर्थ—जिस किसी अनुष्ठान से रागादि दोषो का निरोध होता हो तथा पूर्व सचित कर्म क्षीण होते हो, वे सब मोक्ष के साधक उपाय है। जैसे कि रोग को शमन करने वाला प्रत्येक अनुष्ठान चिकित्सा के रूप मे आरोग्यप्रद है।

– मोह-क्षय –

सुक्कमूले जहा रुक्खे, सिच्चमाणे ण रोहति ।
एव कम्मा न रोहति, मोहणिज्जे खयगते ।। ८ दशा

अर्थ—जिस वृक्ष की जड सूख गई हो, उसे कितना ही सीचिए वह हरा भरा नही होता। वैसे ही मोह के क्षीण होने पर कर्म भी फिर हरे भरे नही होते।

– अध्यात्म-योग –

जहा कुम्मे स अगाइ, सए देहे समाहरे ।
एव पावाइ मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे ।। ९

अर्थ—जैसे कछुआ अपने अ गो को अ दर मे समेट कर खतरे से बच जाता है, वैसे ही साधक अध्यात्मयोग से अ तर्मुखी होकर अपने को पापवृत्ति मे सु क्षित रखता है।

— आचरणहीन ज्ञान —

जाणतोऽवियतरिउ, काइयजोग न जु जइनईए।
सोबुज्झइ सोएण, एव नाणी चरणहीणो॥ १० आव नि १/५४

अर्थ—तैरना जानते हुए भी यदि कोई जल प्रवाह मे कूद कर शारीरिक चेष्टा न करे–हाथ पाव न हिलाए तो वह प्रवाह मे डूब जाता है, ऐसे ही धर्म को जानते हुए भी यदि कोई उसपर आचरण न करे तो वह ससार सागर को कैसे पार कर सकेगा ?

— अल्पसेवी —

थोवाहारो थोवभणिओ य, जो होइ थोव-निद्दो य।
थोवोवहि-उवगरणो, तस्स हु देवा वि पणमति॥११ आव नि १२६५

अर्थ—जो साधक थोडा खाता है, थोडा बोलता है, थोडी नीद लेता है और थोडी ही धर्मोपकरण की सामग्री रखता है, उसे देवता भी नमस्कार करते है।

— हित मित सेवी —

हियाहारा सियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा।
न ते विज्जा तिगिच्छति अप्पाण ते तिगिच्छगा॥१२ ओघ नि ५७८

अथ—जो मनुष्य हिताहारी है, मिताहारी और अल्पाहारी है, उन्हे किसी वैद्य से चिकित्सा करवाने की आवश्यकता नही होती, वे स्वय ही अपने वैद्य, चिकित्सक होते है।

— विवेकाचारी —

इहलोग-निरवेक्खो, अप्पडिबद्धो परम्मिलोयम्हि।
जुत्ताहार-विहारो, रहिद कसाओ हवेसमणो॥ १३ प्रव ३/२६

अर्थ---जो इस लोक से निरपेक्ष है, परलोक मे भी अप्रतिबद्ध—अनासक्त है और विवेक पूर्वक आहार विहार की चर्या रखता है, कषाय रहित है, वही सच्चा श्रमण है।

— आत्मा —

एगो मे सासदो अप्पा, णाण-दसण-लक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे सजोग लक्खणा ॥ १४ नियम १०२

अर्थ—ज्ञान दर्शन लक्षण वाला यह मेरा आत्मा ही शाश्वत तत्व है। इससे भिन्न जितने भी (रागद्वेषादि) भाव है वे सब सयोग—जन्य बाह्यभाव है, अत वे मेरे नहीं हैं।

— शिक्षा के पाच दूषण —

अह पचहि ठाणेहि जेहि सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएण, रोगेणाऽलस्सएण य। १५

अर्थ—मान—अहकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य इन पाच स्थानो से (हेतुओ से) शिक्षा प्राप्त नही होती।

— व्यर्थ गया क्षण —

जाजा वच्चइ रयणी, न सा पडि-नियत्तई।
अहम्म कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ। १६

अर्थ—जो जो रात बीत रही है, वह लौटकर नही आती। अधर्म—करने वाले की वे रात्रिया निष्फल चली जाती है।

— सफल क्षण —

जाजा वच्चइ रयणी, न सापडिनियत्तई।
धम्म च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ ॥ १७

अर्थ—जो जो रात बीत रही है, वह लौट कर नही आती। धर्म करने वाले की वे रात्रिया सफल होती है।

– जीवन-साथी –

दाराणि य सुया चेव, मित्ताय तह बन्धवा।
जीवन्तमणु जीवन्ति, मय नाणुव्वयन्तिय। १८

अर्थ—स्त्रिया, पुत्र, मित्र और बान्धव, जीवित व्यक्ति के साथ जीते है किन्तु वे मृत के पीछे नही जाते।

– पुण्य पाप का फल –

पडन्ति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो।
दिव्व च गइ गच्छन्ति, चरित्ता धम्ममारिय ॥ १६

अर्थ—जो मनुष्य पाप करने वाले हैं, वे घोर नरक मे जाते हैं और आर्य-धर्म का आचरण करने वाले मनुष्य दिव्य गति को प्राप्त करते है।

– ब्राह्मण –

दिव्य-माणुसत्तेरिच्छ, जो न सेवइ मेहुण।
मणसा काय वक्केण, त वय बूम माहण ॥ २०

अर्थ—जो देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी मैथुन का मन, वचन और काय से सेवन नही करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

अलोलुय मुहाजीवी, अणगार अकिंचण।
असंसत्त गिहत्थेसु, त वय बूम माहण ॥ २१

अर्थ—जो लोलुप नही ह, निर्दोष-भिक्षा से जीवन निर्वाह करता है, जो गृहत्यागी है, जो अकिंचन है, जो गृहस्थो मे अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते है।

— कर्म से ब्राह्मण-क्षत्रियादि —

कम्मुणा बभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ २२

अर्थ—मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कम से वैश्य होता है और कर्म से ही शुद्र होता है।

— सत्सग से लाभ —

सवणे नाणे य विन्नाणे पचक्खाणे य सजमे।
अणण्हये तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥ २३

अर्थ—सत्सग से धम श्रवण और उससे तत्त्व ज्ञान, तत्त्व ज्ञान से विज्ञान, विज्ञान से प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान से सयम, सयम से अनाश्रव अनाश्रव से तप, तप से बद्ध कर्मो का नाश, कर्मनाश से निष्कर्मता और निष्कर्मता से सिद्धि अर्थात् मुक्त स्थिति प्राप्त होती है।

— चरित्र रहित का ज्ञान —

सुवहुपि सुयमहीय, किं काहिती चरण विप्पहूणस्स।
अधस्स जह पलित्ता, दीव-सय-सहस्स कोडीवि। २४

अर्थ—अत्यधिक सूत्र पढने पर भी चरित्रहीन को उससे क्या लाभ? जैसे अधे के आगे जलते हुए सैकडो, हजारो एव करोडो दीप भी काम के नही होते।

— चारित्र युक्त ज्ञान —

अप्पपि सुयमहीय, पगासय होइ चरण-जु त्तस्स ।
एक्को वि जह पईवो, सचक्खुअस्स पयासेइ ॥ २५

अर्थ—जिसने चारित्र युक्त होकर थोडा भी सूत्र पढा है वह प्रकाशक होता है । जैसे कि आख वाले के आगे एक भी दीप प्रकाशक होता है ।

— अनित्यता —

अच्चेइकालो तरन्ति राइओ, नयाविभोगा पुरिसाण निच्चा ।
उविच्च भोगा पुरिसचयन्ति, दुम जहा खीण फल व पक्खी ॥ २६
उत्त०

अर्थ—काल बीत रहा है, रातें जल्दी पूरी होती है । भोग भी पुरुषो के नित्य नही हैं । वे पुरुषो के पास आकर वैसे चले जाते हैं, जैसे क्षीण फल वाले वृक्ष से पक्षी ।

खेत्त वत्थु हिरण्णच, पुत्त दारच बन्धवा ।
चइत्ताण इम देह, गन्तव्वमवसस्स मे । २७ उत्त०

अर्थ—क्षेत्र, वस्तु, स्वर्ण, पुत्र, स्त्री, बान्धव और इस शरीर को छोड कर मुझे यहा से अवश्य जाना है ।

— कर्म बीज —

रागोय दोसोऽवि य कम्म-बीय, कम्मच मोहप्पभववयन्ति ।
कम्म च जाइ मरणस्स मूल, दुक्ख च जाइ मरण वयन्ति । २८

अर्थ—राग और द्वेष ये दो कर्म बीज है, कर्म मोह से उत्पन्न होता है । जन्म-मरण का मूल कर्म है और जन्म मरण ही दु.ख है ।

च्चिचा दुपय च चउप्पय च, खेत्त गिहधण-धन्न च मव्व ।
सकम्म-बीओ अवसो पयाइ, पर भव सु दर पावग वा ।२९ उत्त

अथ—दास-दासी, पशु, खेत और धन-धान्य युक्त पूरा घर छोड कर कर्म सहित जीव परवश हो अच्छे या बुरे कर्मानुसार परभव का गमन करता है ।

– मृत्यु –

जहेह सीहो व सिय गहाय,
मच्चू नर तेन हुअन्तकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया,
कालम्मि तम्मि सहरा भवन्ति ।। ३०

अर्थ—जैसे सिंह मृग को गर्दन पकड ले जाता है, ऐसे अन्त काल मे मृत्यु मनुष्य को ले जाती है । उस समय माता पिता व भाई आदि कोई उसके सहायक नही होते ।

– दुर्लभ-धर्म –

लब्भति विउला भोए, लब्भति सुर सपया ।
लब्भति पुत्रमित्त च, एगो धम्मो न लब्भई ।। ३१

अर्थ—विपुल-भोग मिल सकता है, देवो की सम्पदा और पुत्र-मित्र भी मिल जाते हैं, पर एक वीतराग धर्म नही मिलता ।

धम्मेण कुल प्पसूई, धम्मेण य दिव्वरूव सपत्ति ।
धम्मेण धण समिद्धि, धम्मेण सवित्थरा कित्ती ।। ३२

अर्थ—धर्म से कुल वढता और धर्म से दिव्य रूप एव सम्पत्ति मिलती है । धर्म से ही धन वढता और कीर्ति का विस्तार होता है ।

— जिन-वचन —

जिन वयण ओसहमिण, विसयसुह विरेयण अमिय भूयम् ।
जर मरण वाहिहरण, खयकरण सव्व दुक्खाण ॥ ३३

अर्थ—जिनवाणी, विषय सुख निवारण करने मे विरेचन तुल्य है और जरा मरण रूप व्याधि हरण तथा सभी दु खो के विनाश करने मे अमृत के समान है ।

— व्यवहार-नीति —

अपुच्छिओ न भासिज्जा, भासमाणस्स अ तरा ।
पिट्ठि -मस न खाइज्जा, माया मोस विवज्जए ॥ ३४ दश०

अर्थ—विना पूछे किसी के बीच मे नही बोलना और कपट पूर्ण झूठ का सदा वर्जन करना चाहिए।

— राग-द्वेष —

को दुक्ख पाविज्जा, कस्स य सुक्खेहि विम्हओ हुज्जा ।
को वा न लभिज्ज मुक्ख, रागद्दोसा जइ न हुज्जा । ३५

अर्थ—यदि रागद्वेष न हो, तो ससार मे न कोई दु ख पाये और न कोई सुख पाकर विस्मित ही हो, प्रत्युत सब मुक्त हो जाय ।

— क्षमा —

सव्वस्स जीव रासिस्स, भावओ धम्मनिहि अचित्तो ।
सव्वे खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयपि ॥ ३६

अर्थ—धर्म मे स्थिर चित्त होकर मैं सद्भाव पूर्वक सब जीवो से अपने अपराधो की क्षमा चाहता हूँ और अपनी ओर से मै भी उनके अपराधो को क्षमा करता हूँ ।

– वैराग्य –

कम्माण तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ 'उ'।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययति मणुस्सय । ३७ उत्त

अर्थ—जब पाप कर्मों की तीव्रता कम पड जाती हे और चेतन क्रमिक विशुद्धि को प्राप्त करलेता हैं, तब कही मानव जन्म प्राप्त होता है।

असासए सरीरम्मि, रइ नोवलभामह ।
पच्छा पुराव चइयव्वे, फेणबुब्बुय-सन्निभे ।। ३८ उत्त०

अर्थ—मानव तन जल के बुलबुले की तरह नाशवान है । आगे या पीछे इसे एक दिन छोडना हो है, अत इस अशाश्वत शरीर मे मैं स्नेह नही पा सकता ।

माणुसत्ते असारम्मि, वाहि-रोगाण आलए ।
जरा-मरण-घत्थम्मि, खण पि न रमामह ।। ३९ उत्त०

अर्थ—मानव शरीर असार है, आधि व्याधियो का घर है, जरा और मरण से ग्रस्त है, अत मैं क्षण भर भी इसमे रहना नही चाहता ।

जो परिभवई पर जण, ससारे परिवत्तई मह ।
अदुइ खिणियाउ पाविया, इति सखाय मुणी ण मज्जई ।। ४०
'सूत्रकृताग'

अर्थ—जो मनुष्य दूसरे का तिरस्कार करता, वह चिरकाल तक ससार मे परिभ्रमण करता है। पर निन्दा पापका कारण है, यह सोचकर साधक अहमाव का पोषण नही करते।

जा दव्वे होइ मई अहवा, तरुणीसु रूववतीसु।
सा जइ जिणवरधम्मे, करयलमज्झेठिआ सिद्धी।

अर्थ—जो बुद्धि द्रव्य मे अथवा रूपवती तरुणियो मे होती है, वह यदि जिनवर के धर्म मे हो जाय तो हाथ के बीच मे सिद्धि रक्खी हुई है।

२

संस्कृत–सूक्ति

— वेष —

वेष न विश्वसेत् प्राज्ञो, वेषो दोषाय जायते ।
रावणो भिक्षुरूपेण, जहार जनकात्मजाम् ॥ १

अर्थ—बुद्धिमानो को केवल वेष का विश्वास नही करना चाहिए, वेष दोष के लिए भी होता है । रावण ने भिक्षुक के वेष से ही जनक तनया जानकी का हरण किया था ।

— सन्त का परिवार —

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी, शांतिश्चिर गेहिनी ।
सत्य सूनुरय दया च भगिनी, भ्राता मन सयम ।
शय्या भूमितल दिशोऽपि वसन, ज्ञानामृत भोजनम् ।
एते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे ! कस्माद् भय योगिन । २

अर्थ—धैर्य जिसका पिता और क्षमा जिसकी माता है, शान्ति चिर सगिनी–भार्या रूप, सत्य पुत्र, दया बहिन और सयमित मन ही भाई है, पृथ्वीतल जिसके लिये शय्या, दिशाए वस्त्र, ज्ञानामृत

भोजन ये सारे जिसके कुटुम्ब हो, हे मित्र! फिर उस योगी को किसका भय हो सकता है?

— दान —

व्याजे स्याद् द्विगुणं वित्त, व्यवसाये चतुर्गुणम्।
क्षेत्रे शत-गुणं प्रोक्त, पात्रेऽनत-गुण भवेत्॥ ३

अर्थ—ब्याज मे धन दूना होता है और व्यवसाय मे चारगुणा एव खेत मे सौगुणा तथा सत्पात्र मे किया गया दान अनन्तगुण फल देन वाला होता है।

— दान के दोष —

अनादरो विलम्बश्च, वैमुख्य निष्ठुर वच।
पश्चात्तापश्च पञ्चापि, दानस्य दूषणानि च॥ ४

अर्थ—अनादर, विलम्ब, देर से देना, विमुखता, कठोर वाणी के साथ देना एव देने के बाद पश्चात्ताप ये पाँच दान के दोष है।

— दान के भूषण —

आनन्दोऽश्रूणि रोमाञ्चो, बहुमान प्रिय वच।
तथानुमोदनापात्रे दानभूषण पञ्चकम्॥ ५

अर्थ—पात्र मे दान देते समय आनन्दाश्रु, रोमाञ्च होना बहुमान के साथ देना, प्रिय-वचन एव देकर अनुमोदन करना ये पाच दान के भूषण ह।

— दान की उपयोगिता —

ध्यानेन शोभते योगी, सयमेन तपो-धन
सत्येन वचसा राजा, गृही दानेन चारुणा॥ ६

अर्थ—ध्यान मे योगी सुशोभित होता, सयम से तपस्वी सत्य–वाणी मे राजा और गृहस्थ सुन्दरदान से सुशोभित होता है।

भवन्ति नरका पापात्पाप दारिद्र्य सभवम्।
दारिद्र्यमप्रदानेन, तस्माद् दानपरो भवेत् ॥ ७

अर्थ—पाप से नरक मिलते है और दरिद्रता से पाप होता है तथा दान नही करने से दारिद्र्य आती है, अत दान करना चाहिए।

पात्रे त्यागी गुणेरागी, भोगी परिजनै सह।
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा, पुरुष पञ्चलक्षणम् ॥ ८

अर्थ—सुपात्र मे त्याग करने वाला, गुण मे राग करने वाला और परिजनो के साथ भोग करने वाला, शास्त्र मे बोध करने वाला एव युद्ध मे लडने वाला ये पाच लक्षणो वाला पुरुष सत् लक्षण युक्त होता है।

उत्तमोऽप्रार्थितो दत्ते मध्यम प्रार्थित पुन।
याचकैर्याच्यमानोऽपि, दत्ते न त्वधमाधम ॥ ९

अर्थ—उत्तम पुरुष बिना मागे ही देते और मध्यम मागने पर देते है। किन्तु याचको के द्वारा मागे जाने पर भी जो नही देता, वह नीचो मे भी नीच है।

— सुपात्र दान —

सुपात्र-दानाच्च भवेद्धनाढ्यो, धन प्रभावेण करोति पुण्यम्।
पुण्य-प्रभावात् सुरलोकवासी, पुनर्धनाढ्य पुनरेव भोगी ॥ १०

अर्थ—सुपात्र दान से मनुष्य धनाढ्य होता है और धन के द्वारा पुण्य करता है एव पुण्य के प्रभाव से सुरलोक का वासी होता है, इस तरह वह पुन धनाढ्य एव फिर भोगी होता है।

— कुपात्र दान —

कुपात्र दानाच्च भवेद्दरिद्रो, दारिद्र्य दोषेण करोति पापम्।
पाप-प्रभावान्नरक प्रयाति पुनर्दरिद्र पुनरेव पापी ॥ ११

अर्थ—कुपात्र दान से मनुष्य दरिद्र होता है और दारिद्र्य के दोष से मनुष्य पाप करता है, पाप के प्रभाव से नरक जाता, इस प्रकार फिर से दरिद्र और फिर पापी होता रहता है।

— अभय दान —

यो ददाति सहस्राणि, गवामश्वशतानि च।
अभय सर्व-सत्वेभ्य, स्तद्दानमिति चोच्यते ॥ १२

अर्थ—जो हजारो गाय अथवा सैकडो घोडे दान करता है किन्तु जो सभी जीवो के लिए अभयदान देता है, वस्तुत वही बडा दान कहाता है।

— शील —

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधि कुल्यायते तत्क्षणात्,
मेरु स्वल्प शिलायते मृगपति सद्य कुरङ्गायते ॥
व्यालो माल्य गुणायते विषरस पीयूष वर्षायते।
यस्यागेऽखिल-लोक-वल्लभतम शील समुन्मीलति ॥ १३

अर्थ—उस मनुष्य के लिए अग्नि जल तुल्य बन जाती और समुद्र तत्क्षण छोटी नहर सम हो जाता है। मेरु लघु शिलाखण्ड का

रूप धारण कर लेता और सिंह हिरण की तरह आचरण करने लगता है। सर्प माला का रूप ग्रहण करता और विष रस अमृत वर्षण करने लगता है, जिसके कि शरीर मे सम्पूर्ण लोक का वल्लभ शील प्रकटित होता है।

वेश्या रागवती सदा तदनुगा, षड्भीरसै-र्भोजनम् ।
सौधधाम मनोहर वपुरहो नव्यो वय सगम ॥
कालोऽय जलदाविलस्तदपि य काम जिगायादरात् ।
त वन्दे युवती प्रबोध कुशल श्रीस्थूलभद्र मुनिम् ॥ १४

अर्थ—जिनके प्रति रागानुरक्त वेश्या सदा अनुचर की तरह सेवा करती और षट्रस भोजन जिनको प्राप्त था, राजमहल सा मनोहर जिनका निवास स्थान था, जिनका शरीर सुन्दर एव तरुण वय का सयोग वाला था। समय भी घन घटा से घिरा हुआ था। ऐसे समय मे भी जिन्होने आदर पूर्वक काम को जीता, युवती को ज्ञान देने मे कुशल उस श्रीस्थूलभद्रमुनि को मैं वन्दना करता हूँ।

— तप —

नन्दीषेणदृढप्रहारि-जुठला-धन्यो मुनि ढंण्ढण ।
चाण्डालो हरकेशिनाम विदितो भूप प्रदेशी तथा ॥
एकस्त्री नर षट्कहा प्रतिदिन क्रूरोऽर्जुनो मालिक ।
कृत्वा क्षातियुत तपो, हतमला एते गता सद्गतिम् ॥ १५

अर्थ—नन्दीसेन, दृढ प्रहारि चोर, जुठल श्रावक, मुनिढण्ढण, चाण्डाल कुलीन हरिकेशीमुनि, राजा प्रदेशी, एकस्त्री और छपुरुषो को प्रति दिन मारनेवाला क्रूर अर्जुनमाली, इन सब ने शान्ति युक्त तप से कषाय मल को नष्ट करके सद्गति को प्राप्त किया।

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो, दानेनाकार्यकारिण ।
प्रच्छन्न पापा जापेन, तपसा सर्व एव हि ॥ १६

अर्थ—क्षान्ति (क्षमा भाव) से विद्वान् शुद्ध होते है और दान से बुरे काम करने वाले की शुद्धि होती है । छिप कर पाप करने वाले जप से और तपस्या से सभी पाप धुल जाते हैं ।

– चारित्र –

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तुक्रियावान्, पुरुष स विद्वान् ।
सुचिन्तित चौषधमातुराणा,
न नाम मात्रेण करोत्यरोगम् ॥ १७

अर्थ—शास्त्र पढकर भी लोग मूर्ख होते है, किन्तु जो क्रियावान् है वही विद्वान् है । आतुरो के लिए अच्छी तरह विचार कर दी गई दवा भी नाम मात्र से फलदायक नही होती । अर्थात् दवा के नाम मात्र से रोग दूर नही होता, उसे पेट मे लेना होगा ।

आचार-प्रभवो धर्मो, नृणा श्रेयस्करो महान् ।
इह-लोके परा कीर्ति, परत्र परम सुखम् ॥ १८

अर्थ—आचार से होने वाला धर्म ही मनुष्यो के लिये महान् कल्याण-कारी होता है । इससे ससार मे यश-कीर्ति तथा परलोक मे परम सुख प्राप्त होता है ।

– मुक्ति –

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्त, प्रादुर्भवति नाङ्कुर ।
कर्म-बीजे तथादग्धे, न रोहति भवाङ्कुर ॥ १९

।—जिम प्रकार बीज जल जाने पर अ कुर उत्पन्न नही होता, वैसे
ही कर्म बीज के जल जाने पर भवाड्कुर नही उगता।

यस्यचित्तनिर्विषय, हृदय यस्य शीतलप ।
तस्य मित्र जगत्मर्व, तस्य मुक्ति करग्थिता ॥ २०

अथ—जिसका मन विपय विहीन ह एव हृदय शीतल ह उसका सारा
ससार मित्र है और मोक्ष उसके हाथ मे है ।

नाशाम्बरत्वे न सिताम्वरत्वे, न तर्कशास्त्रे न च तत्त्ववादे ।
न पक्ष सेवाश्रयणेन मुक्ति कपायमुक्ति किल मुक्तिरेव ॥ २१

अर्थ—दिगम्बरता अथवा श्वेताम्बरता मे मुक्ति नही है, न तर्क–
शास्त्र मे और न तत्त्ववाद मे है । अपने पक्ष सेवा के बल पर भी
मुक्ति नही मिलती, किन्तु कपाय–मुक्ति ही सच्ची मुक्ति है।

गतपङ्क यथा तुम्ब, जले यात्युपरि स्वयम् ।
क्षीण-कर्ममलो जीवस्तथा याति शिवालयम् २२

अर्थ—पकरहित तुम्बा जैसे स्वय जल के ऊपर आता ह, वैसे ही क्षीण -
कर्म–मल–जीव, मोक्ष को प्राप्त करता है ।

– मिथ्यात्व –

अदेवे देव बुद्धि र्या, गुरुधीरगुरौ च या ।
अधर्मे धर्मबुद्धिश्च, मिथ्यात्व तद्विपर्ययात् ॥ २३

अर्थ—अदेव मे देव बुद्धि तथा अगुरु मे गुरु बुद्धि और अधर्म मे धर्म
बुद्धि, यही बुद्धि–विपर्यय मिथ्यात्व कहाता है ।

शस्यानीवोषरे क्षेत्रे, निक्षिप्तानि कदाचन ।
न व्रतानि प्ररोहन्ति, जीवे मिथ्यात्व वासिते ।। २४

अर्थ—ऊसर क्षेत्र मे डाले गये बीज की तरह मिथ्यात्वी जीव मे किए गये व्रत नही उगते याने भव बधन काटने मे सफल नही होते ।

— अहिंसा —

यूपछित्वा पशून्हत्वा, कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
यद्येवगम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ।। २५

अथ—यूप को काट कर तथा पशुओ को मार कर, रक्त का कीचड बनाकर यदि इस प्रकार स्वर्ग जाया जाय तो नरक मे कौन जायेगा ?

— सच्चा-यज्ञ —

इन्द्रियाणि पशून्कृत्वा वेदी कृत्वा तपोमयीम् ।
अहिंसामाहुतिदद्यादेष यज्ञ सनातन ।। २६

अर्थ—इन्द्रियो को पशु बनाकर और तपोमयी वेदी रच कर, अहिंसा की आहुति देनी चाहिए, यही सनातन यज्ञ है ।

दीर्घमायु पररूपमारोग्य श्लाघनीयता ।
अहिंसाया फल सर्व, किमन्यत् कामदैवसा ।। २७

अर्थ—दीर्घायु, सुन्दर रुप, आरोग्य, श्लाघनीयता, ये सारे अहिंसा के फल है और क्या अहिंसा इच्छित फल देने वाली है ।

— मन —

क्षणमानन्दितामेति, क्षणमेति विपादिताम् ।
क्षण सौम्यत्वमायाति, मर्वस्मिन् नटवन्मन ।। २८

अर्थ—मन क्षण भर मे आनन्दित होता एव क्षणभर मे विपाद को प्राप्त करता तथा क्षण मे ही सौम्य होकर सर्वत्र नटकी तरह चचलता दिखाता है।

मनोयोगो वलीयाश्च, भाषितो भगवन्मते ।
य सप्तमी क्षणार्धेन, नयेद्वा मोक्षमेव च ।। २९

अर्थ—भगवान् के मत मे मनोयोग को ही वलवान् कहा गया है जो कि आधे क्षण मे सप्तम नरक लेजाता और क्षणार्ध मे मोक्ष पहु चा देता है ।

प्रसन्नचन्द्रराजर्षे मंन प्रसर-सवरौ ।
नरकस्य शिवस्यापि, हेतु भूतौ क्षणादपि ।। ३०

अर्थ—प्रसन्नचन्द्र राजर्पि का क्षण मे चचल और स्थिर होता हुआ मन ही नरक और शिव दोनो का कारण वना ।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या, चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्र-वक्त्र-विकारैश्च, लक्ष्यतेऽन्तर्गत मन ।। ३१

अर्थ—आकार, सकेत, गमन, चेष्टा, भापण, नेत्र, और मुख के चढाव उतार से मन के भीतर की वात जानी जाती है।

मन एव मनुष्याणा, कारण बन्ध मोक्षयो ।
वन्धाय विषयासक्त, मुक्त्यै निर्विषय स्मृतम् ।। ३२

अर्थ—मन ही मनुष्यो के वन्ध और मोक्ष का कारण है। जिनमे त्रिषयासक्त मन वन्ध के लिए और विषय रहित मन मोक्ष के के लिए है।

मानस प्राणिनामेव, सर्वकर्मैक-कारणम् ।
मनोरूप हि वाक्य च, वाक्येन प्रस्फुट मन ।। ३३

अर्थ—मनुष्यो के सभी कर्मों का कारण मन ही है। मन के अनुकूल ही वाक्य होता और वाक्य से ही मन प्रस्फुटित होता है।

दान पूजा तपश्चैव, तीर्थ-सेवा श्रुत तथा ।
सर्वमेव वृथा तस्य, यस्य शुद्ध न मानसम् ।। ३४

अर्थ—दान, पूजा तप, तीर्थ और श्रुत सेवा उस व्यक्ति के सभी व्यर्थ है, जिसका कि मन शुद्ध नही है।

श्रीब्रह्मदत्तो नरचक्रवर्ती, मृत्वा गत सोऽपिहि सप्तमी च ।
निर्गत्य तस्माद् भव-पङ्कमग्न, तत्रापिहेतु किल पातकस्य ।।३५

अर्थ—श्रीब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मर कर वह सातवी नरक मे गए और वहा से निकल कर ससार के पक मे मग्न हुए । इसमे भी कारण मन मे पाप का उदय ही है।

– मन की शुद्धि –

ज्ञान तीर्थं धृतिरतीर्थं, पुण्य तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं, विशुद्धिर्मनस परा ।। ३६

अर्थ—ज्ञान तीर्थ है धैर्य तीर्थ है, और पुण्य को भी तीर्थ कहा है किन्तु मनकी विशुद्धि का सबसे बढ़कर तीर्थ माना गया है।

सत्येन शुध्यते वाणी, मनो ज्ञानेन शुध्यति ।
गुरुशुश्रूषया काय शुद्धिरेषा सनातनी ।। ३७

अर्थ—सत्य से वचन शुद्ध होता है और ज्ञान से मन शुद्ध एव गुरु की सेवा से शरीर शुद्ध होता है। वस्तुत यही सनातनी शुद्धि है।

— शान्त-मन —

पिता यस्य शुचिर्भूतो, माता यस्य पतिव्रता ।
ताभ्या य सुनुरुत्पन्नस्तस्य नोचलते मन ।। ३८

अर्थ—जिसका पिता पवित्र है मा पतिव्रता है, उन दोनो से उत्पन्न पुत्र का मन चचल नही होता।

— ब्रह्मचर्य —

नीरोग कान्ति सम्पन्न, सर्व दु ख विवर्जित ।
ब्रह्मचारी भवेल्लोके, पाप्मना च विवर्जित ।। ३९

अर्थ—इस लोक मे ब्रह्मचारी, रोगरहित, कान्तियुक्त, सभी दु खो से बाहर तथा पाप रहित होता है।

आयुस्तेजो वल वीर्यं, प्रज्ञा श्रीश्च महायशा ।
पुण्यञ्च प्रीतिमत्त्व च हन्यतेऽब्रह्मचर्यया ।। ४०

अर्थ—आयु, तेज, वल, वीर्य, बुद्धि, लक्ष्मी, महान्यश, पुण्य और प्रीति ये सभी अब्रह्मचर्य से नष्ट हो जाते हैं।

मरण बिन्दु पातेन, जीवन बिन्दु धारणात्।
तस्माद् यति प्रयत्नेन, कुरुते बिन्दु धारणम् ॥ ४१

अर्थ—एक बूद वीर्य के पतन से मृत्यु और उसी एक बूद के धारण से जीवन बनता ह। अत साधु प्रयत्न पूर्वक उस बूद को धारण किए रहता है।

— ब्रह्मचर्य के दूषण —

सुख शय्या सूक्ष्म वस्त्र, ताम्बूल स्नान्-मज्जन।
दन्तकाष्ठ सुगन्धञ्च, ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥ ४२

अर्थ—कोमल सुखद शय्या, महीन वस्त्र, पान, स्नान, आंखों-अञ्जन, दतधावन और सुगन्धि लगाना ये ब्रह्मचर्य के दूषण है।

— लोभ —

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता, यद्यस्ति किं पातकै।
सत्य चेत्तपसा च किं शुचिमनो, यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥
सौजन्य यदि किं गुणैं सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनै।
सद्‌विद्यायदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ ४३

अर्थ—लोभ अगर हो तो अन्य दुर्गुण से क्या? और पिशुनता हो तो पापो से क्या? सत्य हो तो अन्य तप से क्या? मन पवित्र हो तो अन्य तीर्थ से क्या? सद् विद्या हो तो धन से क्या और अपयश हो तो मृत्यु से क्या? अर्थात् अपयश ही मृत्यु है।

— चौर्य —

चौर्य-कर्म-प्रभावेण, सत्यघोपो द्विजोत्तम।
दु ख हि परम प्राप्तो, पातक किमत परम् ॥ ४४

अर्थ—चौर्य कर्म के प्रभाव से द्विज श्रेष्ठ सत्यघोष ने परम दुःख को प्राप्त किया। इससे बढ़कर दूसरा पाप क्या हो सकता है ?

दौर्भाग्य प्रेष्यता दास्यमङ्गच्छेद दरिद्रताम् ।
अदत्तात्त फल ज्ञात्वा स्थूल-स्तेय विवर्जयेत् ॥ ४५

अर्थ—दुर्भाग्य, सेवकपन, दासता, अंग भग, और गरीबी ये सब अदत्त ग्रहण के फल हैं, ऐसा जानकर स्थूल चौर्य का वर्जन करना चाहिये ।

— भावी —

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम् ,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकजश्री ॥
एव विचिन्तयति कोशगते द्वि-रेफे ।
हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार ॥ ४६

अर्थ—रात जाएगी और सुन्दर सवेरा आएगा, सूर्य उदय लेगा और कमल की शोभा खिलेगी, कमल के कोष मे बैठा भ्रमर इस तरह सोच रहा था कि हाय ! किसी हाथी ने आकर कमलिनी को उखाड कर खीच लिया । समय की गति को कोई नही जान सकता ।

— वचन —

निरवद्य वचो ब्रूहि, सावद्यवचनैर्यत
प्रयाता नरक घोर, वसुराजादयो द्रुतम् ॥ ४७

अर्थ—निष्पाप वचन बोलो, क्योकि सावद्य वचनो से, वसुराजा आदि शीघ्र घोर नरक मे चले गए ।

परस्परस्य मर्माणि, ये भापन्ते नराधमा ।
त एव विलय यान्ति, वल्मीकोदरसर्पवत् ।। ४८

अर्थ—जो नराधम आपस के गूढ रहस्य को वचनो से प्रकट करते है, वे वल्मीक उदरस्थ सर्प की तरह विलय–नाश को प्राप्त होते है ।

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुष, हारा न चन्द्रोज्ज्वला।
न स्नान न विलेपन न कुसुम, नालकृतामूर्द्धजा ।
वाण्येका समलकरोति पुरुष, या सस्कृता धार्यते ।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सतत. वाग्भूषण भूषणम् ।। ४९

अर्थ—पुरुष को केयूर विभूषित नही करता और न चन्द्र की तरह उजला हार ही । स्नान विलेपन नही, फूल और सवारे सिर के बाल भी भूषित नही करते, किन्तु एक वचन ही ऐसा है जो कि सस्कृत रूप से धारण किया गया शोभा बढाता है । निश्चय ही ससार के समस्त आभूषण सर्वदा क्षीण हो जाते—अत वाणी का भूषण ही सच्चा भूषण है ।

– हिंसा –

कुर्याद्वर्ष सहस्र तु, अहन्यहनि मज्जनम् ।
सागरेणापि कृत्स्नेन, वधको नैव शुध्यति ।। ५०

अर्थ—हजारो वर्ष तक प्रतिदिन समस्त सागर के जल से स्नान करता रहे, तब भी हिंसक उससे शुद्ध नही होता है ।

प्रमादेन यथा विद्या, कुशीलेन यथा धनम् ।
कपटेन यथा मैत्री, तथा धर्मो न हिंसया ।। ५१

अर्थ—प्रमाद से जैसे विद्या नही प्राप्त होती और कुशील से जैसे धन नही रहता, कपट से जैसे मैत्री नही टिकती, वैसे हिंसा से कभी धर्म नही होता ।

पङ्गु-कुष्ठि-कुणित्वादि, दृष्ट्वा हिंसा-फल सुधी ।
निरागस्त्रस-जन्तूना, हिंसा संकल्पतस्त्यजेत् ॥ ५२

अर्थ—अपंग, कोढी और विकलांग रूप आदि हिंसा-फल को देखकर विद्वज्जन निरपराधी त्रस जीवो की हिंसा को संकल्प पूर्वक परित्याग करदे ।

— यज्ञ —

नाहं स्वर्ग-फलोपभोग-तृषितो, नाभ्यर्थितस्त्वं मया ।
संतुष्टस्तृण-भक्षणेन सतत, साधो ! न युक्त तव ॥
स्वर्गे यान्ति यदित्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो ।
यज्ञं किन करोषि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा बान्धवैः ॥ ५३

अर्थ—मैं स्वर्ग फल के भोग की तृष्णा नही रखता और न मैंने कभी इसके लिए तुमसे कोई प्रार्थना ही की । मैं घास खाकर सदा सन्तुष्ट रहता हूँ — इसलिए हे याजक ! तुम्हारी यह स्वर्ग काम हिंसा उचित नही है । अगर तुम्हारे द्वारायज्ञ मे मारे जाने वाले प्राणी निश्चय ही स्वर्ग जाते हैं तो तुम अपने माता, पिता, पुत्र और बान्धवो से यज्ञ क्यो नही करते हो ?

— सत्य —

सत्यमेव जयते नानृत, सत्यमेव पन्था विततो देवयान ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा, यत्र तत्सत्यस्य परम निधान ॥५४

अर्थ—सत्य की ही जीत होती ह, असत्य की नही। देवो का भ्रमण मार्ग भी सत्य से ही विस्तृत है। पूर्ण काम ऋषि जन सत्य द्वारा ही उस पद को प्राप्त होते है, जहा कि सत्य का वह परम निधान विद्यमान है।

मूकता मति-वैकल्य मूर्खता बोध-विच्युति ।
वाधिर्य मुखरोगित्व मसत्यादेवदेहिनाम् ।। ५५

अर्थ—गू गापन, बुद्धि की कमी, मूर्खता, ज्ञान का अभाव, बधिरता और मुखरोग ये सब जीवो को असत्य भाषण से ही होते हैं।

प्रसन्नोन्नत वृत्ताना, गुणानाचन्द्र-रोचिषाम् ।
सघात घातयत्येव, सकृदप्युदित मृषा ।। ५६

अर्थ—एक वार भी बोला हुआ असत्य वचन चन्द्र किरण के समान निर्मल और उदात्त गुण समूह को नष्ट कर देता है।

– धर्म –

न तत्परस्य सदध्यात्, प्रतिकूल यदात्मन ।
एष स ेपतो धर्म कामादन्य प्रवर्तते। ५७ 'महाभारत'

अर्थ—जो अपने लिए प्रतिकूल प्रतीत हो, वैसा दु खदायक व्यवहार दूसरो के साथ न करे, यही सक्षेप मे धर्म का सार है। अन्य व्यवहार स्वार्थ मूलक हैं।

धर्म यो बाधते धर्मो, न सधर्म कुधर्मक ।
अविरोधात्तु यो धर्म, स धर्म सत्य विक्रम । ५८ "

अर्थ—जो धर्म दूसरे धर्म का बाधक हो, वह धर्म नही कुधर्म है। सच्चा धर्म वही है, जो किसी दूसरे धर्म का विरोधी न हो।

सर्वेषा य सुहुन्नित्य, सर्वेषा च हितेरत ।
कर्मणा मनसा वाचा, सधर्म वेद जाजले ॥ ५९

अर्थ—जो मन वचन कर्म से सबके हित मे तत्पर–लगा है, तथा जो सबका नित्य–स्नेही है, हे जाजलि ! वही धर्म को जानता है ।

अकृत्य नैव कर्तव्य, प्राणत्यागेऽपि सस्थिते ।
न च कृत्य परित्याज्यमेष धर्म सनातन ॥ ६०

अर्थ—प्राणो का सशय उपस्थित होने पर भी, अनुचित कर्म नही करना चाहिए और न उचित कर्म का त्याग ही, यही सनातन–धर्म है ।

अहिसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रिय-निग्रह ।
एत सामासिक धर्म, चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु ॥ ६१

अर्थ—हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्र रहना, और इन्द्रिय का सयम करना, मनु ने सक्षेप मे चारो वर्ण का यह सम्मिलित धर्म बतलाया है ।

— सत्सग —

निधान सर्व-रत्नाना, हेतु कल्याण-सपदाम् ।
सर्वस्या-उन्नते मूल, महता सङ्ग उच्यते ॥ ६२

अर्थ—महान् पुरुषो का सग, सभी रत्नो का आश्रय, कल्याणप्रद सम्पत्ति का कारण और सारी उन्नति का मूल माना गया है ।

महानुभाव-ससर्ग, कस्य नोन्नतिकारक ।
रथ्याम्बु जाह्नवी सगात् त्रिदशैरपि वन्द्यते ॥ ६३

अथ—बडो का सग किसकी उन्नति नही करता ? नालियो का गदा जल भी गगा के सम्पर्क से देवो के द्वारा पूजा जाना है ।

पश्य सत्सङ्गमाहात्म्य, स्पर्श पाषाण योगत ।
लोहञ्च जायते स्वर्ण, योगात्काचो मणीयते ।। ६४

अर्थ—सत्सग का माहात्म्य देखें कि पारस पत्थर के योग से लोहा भी सोना बन जाता है । और उसी के योग से काच मणि की तरह दिखाई देने लगता है ।

मलायाचल गन्धेन, त्विन्धनञ्चन्दनायते ।
तथा सज्जन-सङ्गेन, दुर्जन सज्जनायते ।। ६५

अर्थ—मलयाचल के सुगन्धि योग मे जलावन की लकडी भी चन्दन की तरह सुगन्धित बन जाती है । वैसे सज्जनो के सग से, दुर्जन भी सज्जन बन जाते है ।

तुलयामो लवेनाऽपि न स्वर्ग नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य, मर्त्याना किमुताशिष ।। ६६

अर्थ—यदि प्रभु मे अनुरक्त रहने वाले सतो का क्षण भर भी सग प्राप्त हो तो उससे स्वर्ग और मोक्ष तक की तुलना नही कर सकते । फिर मनुष्यो के अन्य अभिलषित पदार्थो की तो बात ही क्या ?

भाग्योदयेन बहु जन्म समार्जितेन,
सत्सङ्गमेवलभते पुरुषो यदावै ।
अज्ञान हेतु-कृत-मोह मदान्धकार,
नाश विधाय हि तदोदयते विवेक ।। ६७

अर्थ—अनेक जन्म के पुण्य - समूह से भाग्योदय होने पर जब पुरुष को सत्संग की प्राप्ति होती है, तभी अज्ञान कृत मोह और मदरूपी अन्धकार का नाश होकर विवेक उदित होता है।

– अविचारित–कर्म –

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदा पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिण, गुण लुब्धा स्वयमेव सम्पद ९८
'भारवि

अर्थ—विना विचारे कोई काम सहसा नहीं करना चाहिए। क्योंकि अविवेक–अविचार बडी आपत्तियो का स्थान है। और सोच विचार कर काम करने वालो के पास गुण-मुग्ध होकर सम्पत्तिया स्वय जाती है।

उचितमनुचित वा कुर्वता कार्य जात,
परिणतिरवधार्या यत्नत पण्डितेन।
अति-रभसकृताना कर्मणामाविपत्ते,
र्भवति हृदय दाही शल्यतुल्यो विपाक ॥ ९९

अर्थ—कार्य के उचित अनुचित परिणाम पर पहले विचार कर बुद्धि–मान को तब कार्यारम्भ करना चाहिए। विना विचारे हुए कार्य का परिणाम शूल की तरह पीडा दायक होता है।

कणक-भूषण-सग्रहणोचितो, यदि मणिस्त्रपुणि प्रतिबध्यते।
न स विरौति न चापि स शोभते, भवति योजयितु र्वचनीयता॥७०

अर्थ—स्वर्णाभूषण मे लगाने योग्य मणि यदि निकृष्ट धातु सीसे मे लगायी जाय तो वह मणि न तो रोती है और न सुशोभित होती है, किन्तु इससे जडने वाले की ही निन्दा होती है।

– विचारित कर्म –

सुहृद्भिराप्तै रसकृद्विचारित,
स्वयच बुद्ध्याप्रविचारिताश्रयम् ।
करोतिकार्य खलु य स बुद्धिमान्,
स एव लक्ष्म्या यशसा च भाजनम् ॥ ७१

अर्थ—जो विश्वस्त मित्रो के द्वारा बार बार विचार किए गए एव अपनी बुद्धि के अनुसार सावधानी पूर्वक सोचे हुए कार्य को करता है, वह बुद्धिमान है, और वही ऐश्वर्य तथा कीर्ति का भागी होता है।

य पृष्ट्वा कुरुते कार्य, प्रष्टव्यान्, स्वहितान् गुरून् ।
न तस्य जायते विघ्न , कस्मिञ्चिदपि कर्मणि ॥ ७२

अर्थ—जो मनुष्य अपने हितकारी, पूछने योग्य पुरुषो एव गुरु से पूछ कर कार्य करता है, उसको किसी भी कार्य मे विघ्न उपस्थित नही होता ।

क काल कानि मित्राणि, को देश कौ व्ययागमौ ।
कश्चाह का च मे शक्तिरितिचिन्त्य मुहुर्मुहु ॥ ७३

अर्थ—कैसा समय है ? कौन मित्र है ? कैसा देश है, आय-व्यय क्या है ? मै कौन हूँ और मेरी शक्ति कितनी है ? मनुष्य को हरक्षण इस पर विचार करते रहना चाहिए ।

परीक्ष्यैव तु कर्तव्य, प्रथम क्रियते तु यत् ।
पीत्वा जल पुन पृच्छा, गेहस्येति न साम्प्रतम् ॥ ७४

— सज्जन की भावना —

सपत्सु महता चित्त, भवत्युत्पल-कोमलम् ।
आपत्सु च महाशैल,-शिला-सघात कर्कशम् ॥ ८३

अर्थ—सम्पति की दशा मे बडो का हृदय कमल की तरह कोमल होता है, और विपत्तियो मे पत्थर की चोट खाए हुए महाशैल की तरह कठोर ।

स्वभाव न जहात्येव, साधु-रापद्‌गतोऽपि सन् ।
कर्पूर पावक स्पृष्ट, सौरभ लभतेतराम् ॥ ८४

अर्थ—विपत्ति मे पड कर भी साधु जन अपना स्वभाव नही छोडते । कपूर आग मे पडने पर भी अत्यधिक सुगन्ध फैलाता है ।

— नश्वरता —

आघ्रात मरणेन जन्म-जरया, विद्युच्चल यौवनम् ।
सतोपो धन-लिप्सया शम-सुख प्रौढाङ्गना-विभ्रमै ॥
लोकै र्मत्सरिभि र्गुणा वन भुवो व्यालै र्नृपा दुर्जनै ।
अस्थैर्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्त न किं केन वा ॥ ८५

अर्थ—इस ससार मे मृत्यु ने जन्म को, बुढापा ने चचल तरुणाई को, धनेच्छा ने सतोष को, प्रौढानारी के हाव भाव ने शान्ति सुख को, मत्सरिओ ने गुण को, सर्पो ने वन भूमि को, दुजनो ने राजा को और चचलता ने विभूति को ग्रमलिया ह । यहा इस तरह कौन किससे ग्रस्त नही होता है ?

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वत ।
नित्य सन्निहितो मृत्यु कर्तव्यो धर्म-सग्रह ॥ ८६

अर्थ—शरीर नश्वर है धन भी चिरस्थायी नही है। मृत्यु हर समय सिर पर खडी है, अत धर्म सचय करना चाहिए।

— सज्जन —

तृष्णा छिन्धि भज क्षमा, जहि मद पापेरति माकृथा,
सत्य ब्रूह् यनुयाहि साधु पदवी, सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय स्वान् गुणान्,
कीर्ति पालय दु खिते कुरु दयामेतत् सता लक्षणम्॥ ८७

अर्थ—तृष्णा को छेदन करना क्षमाशील होना, मद को छोडना, पाप मे प्रीति नही करना, सत्य बोलना, साधुना का अनुसरण करना विद्वानो की सेवा करना, मान्यजनो का मान करना, शत्रुओ को भी प्रसन्न रखना अपने गुणो को फैलाना कीर्ति का पालन करना और दु खी जनो पर दया करना, यही सज्जनता की पहचान है।

— एकाकिता निषेध —

एक स्वादु न भुञ्जीत नैक सुप्तेषु जागृयात्।
एको न गच्छेदध्वान, नैकश्चार्थान् प्रचिन्तयेत्॥ ८८

अर्थ—स्वादिष्ट पदार्थ अकेले नही खाना, सबके सोने पर अकेले नही जागना, अकेले मार्ग मे नही चलना तथा अकेले मे गभीर विषय का चिन्तन नही करना चाहिए।

— ईश्वर पूजन —

येन केन प्रकारेण, यस्य कस्यापिदेहिन।
सतोष जनयेत्प्राज्ञस्तदेवेश्वर-पूजनम्। ८९

अर्थ—जिस किसी प्रकार से जिस किसी प्राणी को, विद्वान् सतोष उत्पन्न करे वस्तुत यही सच्ची ईश्वर पूजा है

तप्यन्ते लोक तापेन साधव प्रायशोजना ।
परमाराधन तद्धि, पुरुपस्याखिलात्मन ॥ ६०

अर्थ—साधु जन प्राय ससार के ताप से सतप्त होते है । यही अखिलात्मा भगवान् की उत्कृष्ट आराधना है ।

— एकाकिना —

एक प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुड्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ ६१

अर्थ—प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता और अकेलाही मरता है। एव अकेला ही अपने पुण्य और पाप के फलो को भोगता है ।

— मान का महत्व —

तावदाश्रीयते लक्ष्म्या तावदस्य स्थिरयश ।
पुरुषस्तावदेवासौ, यावन्मानान्न हीयते ॥ ६२

अर्थ—लक्ष्मी तभी तक उस व्यक्ति के पास रहती है तभी तक उसका यश स्थिर रहता है एव तभी तक उसकी गणना पुरुषो मे होती है जब तक कि पुरुष का मान–महत्व नष्ट नही होता ।

— महात्मा —

वदन प्रसाद-सदन सदय हृदय सुधामुचोवाच ।
करण परोपकरण, येषा केषा न ते वन्द्या ६३

अर्थ—जिनका मुख प्रसन्नता का घर है, जिनके हृदय मे दयालुता है, जिनकी वाणी अमृत-वर्षिणी है और जो परोपकार परायण है ऐसे पुरुष किसके वन्दनीय नही होते ? अर्थात् सबके है।

न हायनैर्न पलितै र्न वित्तेन न बन्धुभि ।
ऋपयश्चक्रिरे धर्म, योऽनूचान स नो महान् ॥ ६४ मनु

अर्थ—न वर्षो की अधिकता से, न सफेद बालो से, न धन से और न बन्धुबान्धवो से किसी का महत्व होता है। ऋषियो ने इस धर्म को बतलाया कि हममे जो विद्वान् है, वही बडा है।

– पाप-मुक्ति –

ख्यापनेनानुतापेन तपसाध्ययनेनच ।
पाप-कृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥ ६५ मनु

अर्थ—अपने पाप को प्रकट कर देने से, पश्चात्ताप से, तप से, अध्ययन से और विपत्तिग्रस्त जनो को दान देने से, पापी पाप से छूट जाता है। अर्थात ये प्रायश्चित्त है।

– सिद्धि प्राप्ति –

यशोऽधिगन्तु सुख लिप्सयावा मनुष्यसख्यामतिवर्तितु वा ।
निरुत्सुकानामभियोग-भाजा, समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धि । ६६

अर्थ—यश की प्राप्ति के लिए सुख-लाभ की इच्छा से या जन साधारण की गणना मे आगे आने को आतुर न होकर, दृढनिश्चय के साथ प्रयत्न करने वालो के पास सफलता स्वय उत्सुकतापूर्वक उपस्थित होती है।

– निषिद्ध–कर्म –

यत् कृत्वा न भवेत्धर्मो, न कीर्ति र्न यशोध्रुवम् ।
शरीरस्य भवेत् खेद, कस्तत्कर्म समाचरेत् ॥ ६७

अर्थ—जो काम करने से न धर्म होता हो, न कीर्ति और न स्थायी यश प्राप्त हो उल्टे शरीर को कष्ट मिले, ऐसा काम कौन धीमान् करे ? अर्थात कोई नही ।

अयश प्राप्यते येन, येन चापगतिर्भवेत् ।
स्वर्गाच्च भ्रश्यते येन, तत्कर्म न समाचरेत् ॥ ६८

अर्थ—जिससे अपयश मिले, दुर्गति हो और स्वर्ग से च्युत होना पड़ ऐसा काम नही करना चाहिए ।

– चिन्ता –

सतापाद् भ्रश्यतेरूप, सतापाद् भ्रश्यते बलम् ।
सतापाद् भ्रश्यते ज्ञान, सतापाद् व्याधिमृच्छति । ६९

अर्थ—सताप (चिन्ता) से रूप नष्ट होता, सताप से वल होता, सताप से ज्ञान विनष्ट हो ौर सताप से बढती हे ।

कुग्राम वास, कुजनस्य सेवा, कुभोज
मूर्खश्च पुत्रो विधवा च कन्या, विना

अर्थ—छोटे ग्राम मे वास, नीच जनो की सेवा, तमोगुणी खराब भोजन, क्रोधमुखी पत्नी, मूर्ख पुत्र और विधवा कन्या ये पाच विना अग्नि के शरीर को जलाते है।

चिन्तनेनैधते चिन्ता, त्विन्धनेनेव पावक ।
नश्यत्यचिन्तनेनैव, विनेन्धनमिवानिल ।। १०१

अर्थ—इन्धन से आग की तरह चिन्ता चिन्तन करने से बढती है, चिन्तन नही करने से चिन्ता वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे विना इन्धन की अग्नि।

– पौरुष –

न तदस्ति पृथिव्या वा, दिविदेवेषु वा क्वचित् ।
पौरुषेण प्रयत्नेन, यन्नाप्नोति गुणान्वित ।। १०२

अर्थ—पृथ्वी, आकाश या देवलोक मे कही भी ऐसी वस्तु नही है, जिसे गुणवान् मनुष्य अपने प्रयत्न से प्राप्त नही कर सकता हो ?

– सत्कर्म –

द्वे कर्मणी नर कुर्वन्नस्मिल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन्परुष किञ्चि,-दसतोऽनर्चयस्तथा ।। १०३

अर्थ—किसी के प्रति कठोर वचन नही बोलना और असत् पुरुषो का आदर नही करना, इन दो बातो से मनुष्य इस लोक मे शोभा को प्राप्त होता है।

– निषिद्ध-कर्म –

यत् कृत्वा न भवेत्धर्मो, न कीर्ति र्न यशोध्रुवम् ।
शरीरस्य भवेत् खेद , कस्तत्कर्म समाचरेत् ॥ ९७

अर्थ—जो काम करने से न धर्म होता हो, न कीर्ति और न स्थायी यश प्राप्त हो उल्टे शरीर को कष्ट मिले, ऐसा काम कौन धीमान् करे ? अर्थात कोई नही ।

अयश प्राप्यते येन, येन चापगतिर्भवेत् ।
स्वर्गाच्च भ्रश्यते येन, तत्कर्म न समाचरेत् ॥ ९८

अर्थ—जिससे अपयश मिले, दुर्गति हो और स्वर्ग मे च्युत होना पड ऐसा काम नही करना चाहिए ।

– चिन्ता –

सतापाद् भ्रश्यतेरूप, सतापाद् भ्रश्यते बलम् ।
सतापाद् भ्रश्यते ज्ञान, सतापाद् व्याधिमृच्छति । ९९

अर्थ—सताप (चिन्ता) से रूप नष्ट होता, सताप से बल क्षीण होता, सताप से ज्ञान विनष्ट होता और सताप से व्याधि वढती है ।

कुग्राम वास , कुजनस्य सेवा, कुभोजन क्रोधमुखी च भार्या,
मूर्खश्च पुत्रो विधवा च कन्या, विनाग्निना पञ्चदहन्तिकायम् ।
१००

अर्थ—छोटे ग्राम मे वास, नीच जनो की सेवा, तमोगुणी खराब भोजन, क्रोधमुखी पत्नी, मूर्ख पुत्र और विधवा कन्या ये पाच विना अग्नि के शरीर को जलाते है।

चिन्तनेनैधते चिन्ता, त्विन्धनेनेव पावक ।
नश्यत्यचिन्तनेनैव, विनेन्धनमिवानिल ॥ १०१

अर्थ—इन्धन से आग की तरह चिन्ता चिन्तन करने से बढती है, चिन्तन नही करने से चिन्ता वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे विना इन्धन की अग्नि।

– पौरुष –

न तदस्ति पृथिव्या वा, दिविदेवेषु वा क्वचित् ।
पौरुषेण प्रयत्नेन, यन्नाप्नोति गुणान्वित ॥ १०२

अर्थ—पृथ्वी, आकाश या देवलोक मे कही भी ऐसी वस्तु नही है, जिसे गुणवान् मनुष्य अपने प्रयत्न से प्राप्त नही कर सकता हो ?

– सत्कर्म –

द्वे कर्मणी नर कुर्वन्नस्मिल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन्परुष किञ्चि,-दसतोऽनर्चयस्तथा ॥ १०३

अर्थ—किसी के प्रति कठोर वचन नही बोलना और असत् पुरुषो का आदर नही करना, इन दो बातो से मनुष्य इस लोक मे शोभा को प्राप्त होता है।

– सुभाषित –

ससार विप वृक्षस्य, द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
सुभाषित-रसास्वाद, सगति सुजनं सह ॥ १०४

अर्थ—ससार रूपी विष-वृक्ष के दो फल-अमृत के समान हैं एक सुभाषित का रसास्वाद और दूसरा सज्जनो की सगति ।

द्राक्षा म्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मता गता
सुभाषित-रसस्याग्रे, सुधाभीता दिवगता ॥ १०५

अर्थ—सुभाषित रस के आगे द्राक्षा मलिन हो गई शक्कर पत्थर तुल्य बन गई और सुधा डर कर स्वर्ग चली गई ।

– आत्म-प्रशसा –

परस्तुत-गुणोयस्तु निर्गुणोऽपि गुणीभवेत् ।
इन्द्रोऽपि लघुता याति स्वय प्रख्यापितैर्गुणैः ॥ १०६ चाणक्य

अर्थ—निर्गुण व्यक्ति भी दूसरो के द्वारा प्रशसा पाने से गुणी मान जाता है । अपने मुँह से अपनी तारीफ करने – गुणगाने से इन्द्र भी लघुता को प्राप्त होता है ।

– पुरुष परीक्षा –

यथा चतुर्भि कनक परीक्ष्यते, निघर्षणच्छेदन-ताप-ताडनैः,
तथा चतुर्भि पुरुष परीक्ष्यते, ज्ञानेन शीलेन गुणेन कर्मणा । १०७

अर्थ—जैसे घर्षण, छेदन, ताप और चोट इन चार प्रकारो से स्वर्ण की परीक्षा होती है, वैसे ही ज्ञान, शील, गुण और कर्म इन चार प्रकारो से पुरुष की परीक्षा होती है

– आत्म ज्ञानी –

मित भुक्ते सविभाज्याश्रितेभ्यो, मितस्वपित्यमित कर्मकृत्वा ।
ददात्यमित्रे ष्वपि याचित मन्, तमात्मवन्त प्रजहत्यनर्थाः ॥१०८

अर्थ—जो अपने आश्रितो मे बाटकर परिमित थोडा खाता है अधिक काम करके थोडा आराम करता है और मागने पर शत्रु को भी दान देता है, उस आत्मवान पुरुष को अनर्थ सर्वथा छोड देता है ।

– तेज हीन

यो विषाद प्रसहते, विक्रमे समुपस्थिते ।
तेजसा तस्य हीनस्य, पुरुषार्थो न सिद्धयति ॥ १०९

अर्थ—जो पराक्रम के अवसर पर विषादग्रस्त हो जाता है, उस तेज-हीन पुरुष का कोई पुरुषार्थ सिद्ध नही हो पाता ।

– विजय का मूल –

न तथा बल-वीर्याभ्या, जयन्ति विजिगीषव ।
यथा सत्यानृशसाभ्या धर्मेणैवोद्यमेन च ॥ ११० महाभारत

अर्थ—विजयाभिलाषी बल और वीर्य से उतनी विजय नही प्राप्त कर सकते, जैसे कि सत्य, उदारता, धर्म और उद्यम से प्राप्त करते है ।

– त्याग –

आश्वास्य पर्वतकुल तपनोष्मतप्त,
दुर्दाहवह्निविधुराणि च काननानि ।
नाना नदी नद शतानि च पूरयित्वा,
रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमा श्री । १११

अर्थ—पर्वत कुल को आश्वस्त करके, दावाग्नि एव दहकते सूर्य की ज्वाला से दहकती वन भूमि को शान्त करके नाना नदी नद को जल पूरित करके हे मेघ! जो तुम खाली हो गए हो, यही तुम्हारी शोभा है। अपने को सबके मगल हेतु लुटा देना ही सबसे बडी सम्पत्ति है।

— पण्डित —

नष्ट मृतमतिक्रान्त, नानुशोचन्ति पण्डिता ।
पण्डिताना च मूर्खाणा, विशेषोऽय यत स्मृत । ११२

अर्थ—जो वस्तु नष्ट हो गई, जो मर गया और जो बात बीत चुकी, इनके लिए पण्डित जन शोक नही करते। विद्वानो और मूर्खो मे यही विशेषता होती है।

वैद्य पानरत नट कुपठित स्वाध्याय हीन द्विज,
योध कापुरुष हय गतरय मूर्ख परिव्राजकम्।
राजान च कुमन्त्रिभि परिवृत देशच सोपद्रव,
भार्या यौवन गर्विता पररता मुञ्चन्ति ते पण्डिता ।। ११३

अर्थ—जो मदिरा पायी वैद्य को, खराब पढे नट को, स्वाध्यायहीन ब्राह्मण को, कायर सैनिक को, गतिहीन अश्व को, मूर्ख सन्यासी को, खराब मन्त्रियो मे सेवित राजा को, उपद्रव युक्त देश को और यौवन गर्विता तथा दूसरे मे आसक्त-पत्नी को छोड देते है, वे पण्डित है।

— कर्म —

कर्मणा बाध्यते बुद्धि, न बुद्ध्या कर्म बाध्यते ।
सुबुद्धिरपि यो रामो, हैम हरिणमन्वगात् ।। ११४

अर्थ—कर्म से बुद्धि बाधित होती है, किन्तु बुद्धि से भाग्य बाधित नही होता, जैसे कि उत्तम बुद्धि वाले भी राम स्वर्ण मृग के पीछे दौड गए।

धनानिभूमौ पशवश्च गोष्ठे, भार्या गृहद्वारि जन श्मशाने।
देहश्चिताया परलोक मार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीव एक ॥ ११५

अर्थ—धन भूमि मे, पशु गोष्ठ मे, पत्नी घर के दरवाजे तक, प्रियजन श्मशान तक और देह चिता तक ही रह जाते है। आगे परलोक मार्ग मे जीव अकेला ही कर्मानुसार जाता है। अर्थात् अच्छे बुरे कर्म साथ लिये जाता है।

सत्यानुसारिणी लक्ष्मी, कीर्तिस्त्यागानुसारिणी।
अभ्यास-सारिणी विद्या, बुद्धि कर्मानुसारिणी ॥ ११६

अर्थ—लक्ष्मी सत्य के अनुसार मिलती और कीर्ति त्याग के अनुकूल, विद्या अभ्यासानुकूल और बुद्धि कर्म के अनुसार मिलती है।

वैद्या वदन्ति कफपित्त-मरुद् विकारान्,
ज्योतिर्विदो ग्रहकृत प्रवदन्ति दोषम्।
भूताभिषङ्ग इति भूतविदो वदन्ति,
प्राचीन कर्मबलवन्मुनयो वदन्ति ॥ ११७

अर्थ—मनुष्यो की कष्ट युक्त दशा को देख कर वैद्यजन कहते हैं कि कफ, पित्त और वायु का विकार है। ज्योतिषी को पूछा जाता है तो वे ग्रह कृत दोष बताते है। भूतविद्या के जानकार भूतो का सग कहते, किन्तु मुनिजन कहते, हैं कि प्राक्तन् कर्म बलवान है—उसी का दोष है।

नैवाकृति फलति नैव कुल न शोलम्,
विद्यापि नैव न च जन्मकृतापि नेवा ।
कर्माणिपूर्व-तपसा किल सचितानि,
काने फलन्ति पुरुशस्य यथेह वृक्षा ॥ ११८

अर्थ—मनुष्य का आकार नही फल देता और न कुल शील ही फलता है। विद्या भी नही और जन्म भर की गई सेवा भी नही फलती। किन्तु पूर्व तप से सचित कर्म ही पुरुषो के समय पर यहा फल देते है जैसे वृक्ष ॥

आपदर्थे धन रक्षेद्भाग्यभाजा कुतापद ।
कदाचित्कुपितो देव सचितोऽपि विनश्यति ॥ ११९ भोजप्रबन्ध

अर्थ—विपत्ति के लिए धन को बचाना चाहिए । किन्तु भाग्यशाली को आपत्ति कहा ? अगर कही दैव-भाग्य रूठ गया तो युग युग की सचित लक्ष्मी भी एक साथ विनष्ट हो जाती है।

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणै सतापितो मस्तके ।
वाञ्छन्देशमनातप विधिवशात्तालस्य मूल गत ॥
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्न सशब्द शिर ।
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यात्यापद ॥ १२०

अर्थ—कोई खल्वाट- गजा व्यक्ति सूर्य की किरणो से माथा तपने से, आतपरहित स्थान को चाहते हुए सयोगवश ताल वृक्ष के नीचे पहुच गया। वहा भी उसके माथे पर ताल का महा फल गिरा जिससे जोर की आवाज के सग उसका सिर फूट गया। इस तरह जहा भी भाग्यहीन व्यक्ति जाता है, वही पर आपत्तिया पहुच जाती है।

याद्दग क्रियते कर्म ताद्दग भुज्यते फलम्।
याद्दशमुप्यते बीज, ताद्दग प्राप्यते फलम्॥ १२१

अर्थ—जैसा कर्म करने है, वैमा ही फल भोगा जाता है। जैसा बीज वोन है, वैसा ही फल मिलता है।

स्वयकृतकर्म यदात्मनापुरा, फलतदीय लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्त यदि लभ्यते स्फुट, स्वयकृत कर्म निरर्थक तदा। १२२

अर्थ—अपने आत्मा ने पहले जो कर्म स्वय किया है, उसी का शुभ अशुभ फल प्राप्त करता है। अगर दूसरे का दिया फल मिलना हो ता स्वयकृत कर्म स्पष्ट ही निरर्थक हो जाए गे।

— कम प्रशसा —

व्रजत्यध प्रयात्युच्चैर्नर स्वैरेव चेष्टित।
अध कूपस्य खनक, ऊर्ध्व प्रासादकारक। १२३

अर्थ—मनुष्य अपनी ही चेष्टाओ से नीचे और ऊपर जाता है। कूए को खोदने वाला नीचे की ओर उतरता तथा महल बनाने वाला ऊपर की ओर चढता है।

— सफल-जीवन —

यस्मिन् श्रुतिपथ प्राप्ते, दृष्टे स्मृतिमुपागते।
आनन्द यान्ति भूतानि, जीवित तस्यशोभते॥ १२४ योगवाशिष्ठ

अर्थ—जिसके नाम कर्णगोचर होने पर, जिसको देखकर और जिसका स्मरण कर समस्त जीवो को आनन्द होता है, उसी का जीवन सफल एव शोभायुक्त है।

— बड़प्पन —

तृणानि नोन्मूलयतिप्रभञ्जनो, मृदूनि नीचैं प्रणितानिसर्वत ।
स्वभाव एवोन्नत-चेतसामय, महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम् ।
१२५

अर्थ—पवन, कोमल और छोटे तथा सब तरह से झुके हुए तृणों को नहीं उखेडता। श्रेष्ठ हृदय का यह स्वभाव है कि बड़े लोग बडो पर ही बल दिखाते है।

— असमय की बात —

मञ्जुलापि न वाग्भाति, प्रोक्तानवसरे जनै ।
शृंगार शोभते नैव, समरे भूरि वर्णित, । १२६

अर्थ—असमय की सुन्दर बात अच्छी नही लगती। जैसे युद्ध मे शृंगार का अतिशय वर्णन शोभा नही देता।

अप्राप्तकाल वचन, वृहस्पतिरपिब्रुवन्
लभतेऽनल्पमज्ञानमपमान च पुष्कलम् ।।

अर्थ—असमय की बात को यदि वृहस्पति भी कहते हो तो वे भी अत्यन्त निरादर और अपमान को पाते हैं।

— हितवचन —

प्रिय वा यदि वा द्वेष्य, शुभ वा यदि वाशुभम्।
अपृष्टोऽपि हित ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत् पराभवम् ।।

अर्थ—जिसकी पराजय न चाहते हो, उसके लिए प्रिय या अप्रिय अच्छी या बुरी हितकारी बात बिना पूछे भी कह देनी चाहिए।

– अवसर –

अरसापि हि वाग्भाति, प्रोक्तावसर एव हि ।
सर्व-चित्त-प्रमोदाय, गालि-दान करग्रहे ॥ १२८

अर्थ—समय पर कही जाने वाली नीरसवाणी भी अच्छी लगती है। जैसे विवाह काल मे बोली गई गाली भी सबके हृदय मे प्रमोद के लिए होती है ।

कटुक वा मधुर वा, प्रस्तुत-वाक्य मनोहारि ।
वामे गर्दभनादश्चित्त-प्रीत्यं प्रयाणेषु । १२९

अर्थ—चाहे कटु या मधुर क्यो न हो, प्रसग पर बोला गया वाक्य मनोहर होता है । यात्रा के समय मे वामभाग म गदहे का बोलना मन की प्रसन्नता के लिए होता है ।

वनानि दहतो वह्नेः, सखा भवति मारुत ।
स एव दीप नाशाय, कृशे कस्यापि सौहृदम् ॥ १३०

अर्थ—वनो को जलाने वाली अग्नि को पवन मित्र बन जाता है और वही पवन दीप के बुझाने का कारण भी बनता है । इससे सिद्ध है कि दुर्बल मे कोई भी मैत्री नही रखता ।

– वाणी-प्रहार –

रोहते सायकैर्विद्ध छिन्न रोहति चासिना ।
वचो दुरुक्त बीभत्स, न प्ररोहतिवाक् क्षतम् ॥ १३१

अर्थ—बाणो से विद्ध अग भर जाता है, तलवार का घाव भी भर जाता है किन्तु वाणी से विद्ध-हृदय कभी नही भरता क्योकि दुर्वचन अति भयकर होता है ।

— वुद्धिमत्ता —

अनारम्भो हि कार्याणा,, प्रथम वुद्धि लक्षणम् ।
आरव्धस्यान्तगमन, द्वितीय वुद्धि लक्षणम् ॥ १३२

अर्थ—विना सोचे कार्यारम्भ न करना पहली वुद्धिमानी है और आरभ किये हुए कार्य को अच्छी तरह समाप्त करना वुद्धिमानी का दूसरा लक्षण है ।

— सुअवसर —

कालो हि सकृदभ्येति, यन्नर काल काक्षिणम् ।
दुर्लभ स पुनस्तेन, काल कर्माऽचिकीर्षता । १३३

अर्थ—सुअवसर चाहने वाले मनुष्य को जीवन मे सुअवसर एकवार प्राप्त होता है । उस समय जो पुरुष काम करना नही चाहता उसे वह अवसर फिर प्राप्त नही होता ।

— मौन —

आत्मनो मुखदोषेण, वध्यन्ते शुक सारिका ।
वकास्तत्र न वध्यन्ते, मौन सर्वार्थसाधनम् । १३४

अर्थ—शुक और सारिका अपने ही मुख दोष से पकडे जाते है । परन्तु वगुले नही पकडे जाते । अत मौन-चुप रहना सव कामो को सिद्ध करने वाला है ।

कोलाहले काककुलस्य जाते, विराजते कोकिल कूजित किम् ।
परस्पर सवदता खलाना, मौन विधेय सतत सुधीभि, । १३५

अर्थ—काक कुल के कोलाहल के समय कोयल का कूजना क्या शोभा देता है ? ऐसे ही दुष्टजनो के परस्पर वाद विवाद के समय विद्वानो का सदा मौन धारण ही अच्छा है।

मौखर्यं लाघवकर, मौनमुन्नति कारकम्।
मुखर नूपुरवादे, कण्ठे हारो विराजते ॥ १३६

अर्थ—वाचालता लघुता बढाती है और मौन उन्नति करने वाला है। मुखर नूपुर पाव मे पहना जाता है और नही बोलने वाला हार गले मे सुशोभित होता है।

भद्र कृत-कृत भद्र कोकिलै जंलदागमे।
दर्दु रा यत्र, वक्तारस्तत्र मौन हि शोभते। १३७

अर्थ—वर्षा ऋतु मे कोकिल ने मौन रखकर अच्छा ही किया। क्योंकि जिसमे मेढक वक्ता हो, वहा पर मौनता की ही शोभा है।

— गुण महिमा —

यदि सन्ति गुणा पु सा, विकसन्त्येव ते स्वयम्।
नहि कस्तूरिकाऽऽमोद , शपथेन विभाव्यते ॥ १३८

अर्थ—मनुष्य मे यदि गुण हैं तो उनका प्रकाश स्वय हो जाता है। कस्तूरी की सुगन्ध को शपथ से सिद्ध नही किया जाता।

— मनुष्य जीवन —

सोपान भूत मोक्षस्य, मानुष्य प्राप्य दुर्लभम्।
यस्तारयति नात्मान, तस्मात् पापतरोऽत्र क ॥ १३९

अर्थ—जो मोक्ष की सीढी रूप अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर भी अपनी आत्मा का कल्याण नही करता, उससे बडा पापी ससार मे कौन है ?

– तृष्णा–क्षय –

यच्च काम सुख लोके यच्च दिव्य महत्सुखम् ।
तृष्णा क्षय सुखस्यैते, नार्हत षोडशी कलाम् । १४० 'महाभारत'

अर्थ—ससार का काम–सुख और स्वर्गीय परमानन्द भी तृष्णाक्षय के आनन्द के सोलहवे भाग भी नही हो सकते ।

– मानस तीर्थ –

ध्यानजले ज्ञानह्रदे, सर्व-पाप-भयापहे ।
य स्नाति मानसे तीर्थे, स याति परमागतिम् ॥ १४१

अर्थ—अपने मानस तीर्थ मे, ज्ञान रूपी सरोवर के सर्व पाप और भय को हरण करने वाले ध्यान रूपी जल मे जो स्नान करता है, वही परम गति को प्राप्त करता है ।

– वैराग्य –

यावत कुरुते जन्तु, सम्बन्धान्मनस प्रियान् ।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते, हृदये शोकशङ्कव ॥ १४२

अर्थ—जीव जितना ही मन के प्रिय सम्बन्धो को जोडता है, उतने ही उसके हृदय मे शोक की कीलें भीतर गडती जाती है ।

मातृ पितृ-सहस्राणि पुत्र-दारशतानि च ।
तवानन्तानि यातानि, कस्य ते कस्य वा भवान् ॥ १४३

अर्थ—हजारो की संख्या मे माता पिता और सैकडो की संख्या मे पुत्र एव पत्नियां भी हो गई। इन अनन्त सम्बन्धो मे किसके वे है और 'तुम' किसके हो ? अर्थात् यहा कोई किसी का नही है।

गृहारम्भो हि दुःखाय, न सुखाय कदाचन।
सर्पः परकृतं वेश्म, प्रविश्य सुखमेधते ॥ १४४

अर्थ—गृह बनाना दुख का कारण है, वह कभी भी सुख के लिए नही होता। सर्प दूसरो के बनाए घर मे ही प्रवेश कर सुख प्राप्त करता है।

व्याघ्रीव तिष्ठतिजरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुः परिस्रवति भिन्न घटादिवाम्भो,
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ १४५

अर्थ—व्याघ्री की तरह मनुष्य को बुढापा चहुँओर से तर्जना करता है और शत्रु की तरह रोग शरीर पर प्रहार करते है। आयु, फूटे घडे के जल की तरह छीजती (निकलती) जाती है, फिर भी मनुष्य एक दूसरे का बुरा करता है, यह महान् आश्चर्य की बात है।

संसार वास-भीरूणा, त्यक्तान्तर्बाह्य-सङ्गिनाम्।
विषयेभ्यो निवृत्ताना, श्लाघ्य तेषा हि जीवितम् ॥ १४६

अर्थ—संसार वास से डरने वाले, भीतर तथा बाहर के सम्बन्धो को छोडने वाले, तथा विषयो से पराङ्मुखजनो का ही जीवन श्रेष्ठ है।

न चेन्द्रस्य सुख किञ्चन्न चापि चक्रवर्तिन ।
सुखमस्ति विरक्तस्य, मुनेरेकान्त जीविन ॥ १४७

अर्थ—एकान्त मे जीवन निर्वाह करने वाले, विरक्त मुनि के जीवन का जो सुख है उसके आगे इन्द्र एव चक्रवर्तियो का सुख भी कुछ नही है ।

– मोह –

जानामि क्षणभङ्गुर जगदिद जानामि तुच्छ सुख ।
जानामीन्द्रियवर्गमेतदखिल, स्वार्थैकनिष्ठ सदा ॥
जानामि स्फुरिताऽचिरद्युतिचल, विस्फूर्जित सम्पदाम् ।
नो जानामि तथापि क पुनरसौ मोहस्य हेतुर्मम ॥ १४८

अर्थ—मैं जानता हूँ कि यह जगत क्षण भगुर है और यह भी जानता हूँ कि यहा के सभी सुख तुच्छ है । जानता हूँ कि ये सारे इन्द्रिय समूह सवदा स्वाथ सिद्धि मे सने रहते है । मैं जानता हूँ कि यहा की सारी सम्पदा क्षणभगुर विजली की चमक की तरह चचल है, किन्तु यह नही जानता कि फिर यहा मेरे मोह का कौनसा कारण है ?

– गति –

नरस्य चिह्न नरकागतस्य, विरोधिता बन्धु जनेषुनित्यम् ।
सरोगता नीचगतेषु सेवा, ह्यतीव दोषा कटुका च वाणी ॥१४९

अर्थ—नित्य बन्धु जनों मे विरोध, रोग युक्त शरीर, नीच जनो की सेवा करना, और अत्यन्त दोष युक्त कटुवाणी बोलना ये नरक मे आए मनुष्य के चिह्न हैं ।

बह्वाशी नैव सन्तुष्टो, मायावी च क्षुधाधिक ।
स्वपन्मूढोऽलसश्चैव, तिर्यग्योन्यागतो नर ॥ १५०

अर्थ—बहुत खाने वाला, असन्तुष्ट, मायावी, कपटी अधिक भूख वाला खूब सोने वाला, मूढ और आलसी ये तिर्यग् योनि से आने वाले नर के लक्षण है ।

नातिलोभो विनीतश्च, दयादानरुचिर्मृदु ।
प्रसन्नवदनश्चैव, मनुष्यादागतो नर ॥ १५१

अर्थ—अत्यन्त लोभ नही करने वाला, विनीत, दया दान मे रुचि रखने वाला, कोमल, प्रसन्न मुख ये मनुष्य योनि मे आने वाले नर समझने चाहिये ।

स्वर्गच्युतानामिह जीव लोके,चत्वारि चिन्हानि वसन्ति देहे ।
दानप्रसङ्गो मधुरा च वाणी देवार्चन सज्जन तर्पणञ्च ॥ १५२

अर्थ—ससार मे स्वर्ग से च्युत लोगो की देह मे चार चिन्ह होते है, दान का अवसर, मधुर वचन देवभक्ति एव साधु पुरुषो को सतुष्ट करना।

क्षुधालुता मान विहीनता च, शाठ्य भय शोक मनोऽप्रशस्ति ।
आहारनिद्रे प्रचुरे च चिन्ह तिर्यग्भवादागतमानवानाम् ॥१५३

अर्थ—जोरो की भूख, मान रहित जीवन, शठता, भय एव शोक से युक्त मन की अशाति, आहार एव नीन्द की प्रचुरता ये तिर्यग् भव से आए मनुष्यो की पहचान हैं ।

निर्दम्भता मानदयालुता च, ऋजुस्वभावो विनयो विवेक ।
चातुर्य-निर्लोभ मनो विशुद्धि-श्चिन्ह नराणा मनुजागतानाम् ॥ १५४

अर्थ—दम्भ हीनता, मानपाना, दयालुता कोमल स्वभाव, विनय विवेक, चतुरता, निर्लोभिना, मन की विशुद्धि ये मनुष्य भव से आए मनुष्यो की पहचान हैं।

वदान्यता धर्मगुरौरुचिश्च, नम्रस्वभावो मधुरा च वाणी।
उदारबुद्धिर्जनके च भक्तिश्चिन्ह नराणाममरागतानाम् ॥ १५५

अर्थ—श्रेष्ठना, धमगुरु मे रुचि, नम्र स्वभाव, मधुरवाणी, उदार बुद्धि माता और पिता मे भक्ति ये स्वर्ग से आए मनुष्यो के चिन्ह है।

उन्मार्गदेशको, मार्ग-नाशको बहुमायिक।
शठवृत्ति सशल्यश्च, तियगायुर्निबन्धका ॥ १५६

अर्थ—बुरे, मिथ्या मार्ग का उपदेश करने वाला और प्रशस्त माग का विनाशक, बहुमायावी, शठवृत्तिवाला, शल्यवाला दोषयुक्त व्रतवाला ऐसा मनुष्य तिर्यग्, आयु को बाधने वाला होता है।

प्रकृत्याऽल्प कषाय स्याच्छील सयम वर्जित।
दानशीलो मनुष्यायुर्गुणैं बंध्नाति मध्यमै ॥ १५७

अर्थ—जो शील तथा सयम से रहित भी दानशील तथा स्वभाव से अल्प कषाय वाला हो वह मध्यम गुणो से मनुष्यायु को बाधता है।

अकाम निर्जरा बाल-तपोऽणुव्रत सुव्रतै।
जीवो बध्नातिदेवायु, सम्यग्दृष्टिश्च यो भवेत् ॥ १५८

अर्थ—अकाम निर्जरा करने वाला, अणुव्रत एव महाव्रतो से बाल तप करने वाला और सम्यग दृष्टि जीव देवायु को बाधता है।

— नरकगामी —

कूपानाञ्च तडागाना, प्रपानाञ्च परन्तप ।
रथ्यानाञ्चैव भेत्तारस्ते वै निरय गामिन ॥ १५६

अर्थ—कूए, पोखर, प्याउ, और नाले-नहर आदि को तोडने वाले निश्चय नरकगामी होते हैं।

अनाथ कृपण दीन, रोगार्त्तं वृद्धमेव च ।
नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते वै निरय गामिन १६०

अर्थ—असहाय, सूम, दीन, रोग पीडित एव वृद्ध जन पर जो मूर्ख अनुकम्पा नही करता, वह नरक गामी होता है।

कृतघ्नो निर्दय पापी, परद्रोह विधायक ।
रौद्रध्यान पर क्रूरो नरो नरकमाप्नुयात् ॥ १६१

अर्थ—कृतघ्न, निर्दय, पापी, परद्रोह करने वाला, रौद्रध्यानी, क्रूर नर नरक को जाता है।

— स्वर्गगामी —

आक्रोशन्त स्तुवन्तञ्च, तुल्य पश्यन्ति ये नरा ।
शान्तात्मानो जितात्मानस्ते नरा स्वर्गगामिन ॥ १६२

अर्थ—कटुवचन कहने वाला या स्तुति करने वाला इन दोनो को जो तुल्य दृष्टि से देखता है तथा जो शान्त एव जितात्मा है, वह मनुष्य स्वर्ग जाता है।

कर्मणा मनसा वाचा, नोपतापयते परम् ।
सर्वथा शुद्धभावो य, स यातित्रिदिव नर । १६३

अर्थ--कर्म से मन से, वचन से जो औरों को नही सताता एव जो स्वभाव शुद्ध भाव वाला है वह स्वर्ग को जाता है।

परस्वे निर्ममा नित्य, परदार विवर्जका ।
धर्मलब्धार्थ भोक्तारस्ते नरा स्वर्गगामिन ।। १६४

अर्थ—जो पर धन मे नित्य ममता रहित है एव पर स्त्री का त्यागी है और धर्म से प्राप्त धन को भोगने वाला है ऐसे आदमी स्वर्ग गामी होते है।

मातापित्रोश्चशुश्रूषा, ये कुर्वन्तिसदादृता ।
वर्जयन्ति दिवास्वाप ते नरा स्वर्गगामिन ।। १६५

अर्थ—जो आदर पूर्वक सदा माता पिता की सेवा करते हैं तथा दिन मे सोना छोडते हैं, ऐसे नर स्वर्गगामी होते है।

— ध्यानी —

ज्ञान वैराग्य सम्पन्न, सवृतात्मा स्थिराशय. ।
मुमुक्षुरुद्यमी शान्तो ध्याने धीर प्रशस्यते ।। १६६

अर्थ—ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न, सवृत्त आत्मा, स्थिर विचार वाला, मोक्ष की इच्छा वाला, उद्यमी, शान्त एव धीर जन ध्यान मे प्रशस्त कहा जाता है।

यत्र रागादयो दोषा, अजस्र यान्ति लाघवम् ।
तत्रैव वसति साध्वी, ध्यान काले विशेषत ।। १६७

अर्थ—जहा, रागादि दोष सतत लघुता को प्राप्त होते याने कम होते हैं, ऐसे ही स्थानो मे ध्यानी को रहना विशेष ठीक है, खासकर ध्यान के समय मे।

-ज्ञानी का हृदय-

यथामृगा मृत्युभयेनभीता, उद्धृत्य कर्णौनकरन्ति निद्राम् ।
एव बुधा ज्ञान समन्विता हि, ससार-भीता न करन्ति पापम् ॥१६८

अर्थ—जैसे मृत्यु भय से डरे हुए मृग कान खोलकर निद्रा ग्रहण नहीं करते, ऐसे ही ज्ञानयुक्त विद्वान् जन्म मरण रूप ससार के डर से पाप नही करते है ।

- बलवान् -

हस्ती स्थूल तनु स चाकुशवश कि हस्ति मात्रोऽङ्कुशो·
वज्रेणाभिहत· पतन्ति गिरय कि वज्रमात्रो गिरि ॥
दीपे प्रज्वलिते विनश्यति तम कि दीपमात्र तम ।
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु क प्रत्यय ॥ १६९

अर्थ—हाथी मोटे शरीर वाला होकर भी अकुश का वशवर्ती होता है, तो क्या अकुश हाथी के समान बडा है ? वज्र के प्रहार से पहाड टूटकर गिरते हैं तो क्या पर्वत वज्र इतना ही है ? दीप जलाए जाने पर अन्धकार नष्ट होता है तो क्या अन्धकार दीपक जितना ही है ? याने नही। अत बलवान वही है जिसमे तेज विराजमान है। बाहरी स्थूलता (मुटापे) का क्या विश्वास ?

स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति, सिहा सत्पुरुषा गजा ।
तत्रैव निधन यान्ति, काका कापुरुषा मृगा ॥ १७०

अर्थ—सिह, सत्पुरुष और हाथी अपने स्थान को छोडकर बाहर जाते हैं। और कौआ कायर पुरुष एव मृग जहा जन्म लेते हैं, वही पर देह त्याग देते हैं।

अर्थ—कम से, मन से, वचन से जो औरों को नही सताता एव जो सवथा शुद्ध भाव वाला है वह स्वग को जाता है।

परस्वे निर्ममा नित्य, परदार विवर्जका ।
धर्मलब्धार्थ भोक्तारस्ते नरा स्वर्गगामिन ॥ १६४

अर्थ—जो पर धन मे नित्य ममता रहित है एव पर स्त्री का त्यागी है, और धर्म से प्राप्त धन को भोगने वाला है ऐसे आदमी स्वर्ग गामी होते है।

मातापित्रोश्चशुश्रूषा, ये कुर्वन्तिसदादृता ।
वर्जयन्ति दिवास्वाप, ते नरा स्वर्गगामिन ॥ १६५

अर्थ—जो आदर पूर्वक सदा माता पिता की सेवा करते हैं तथा दिन मे सोना छोडते है, ऐसे नर स्वर्गगामी होते है।

— *ध्यानी* —

ज्ञान वैराग्य सम्पन्न, सवृतात्मा स्थिराशय. ।
मुमुक्षुरुद्यमी शान्तो ध्याने धीर प्रशस्यते ॥ १६६

अर्थ—ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न, सवृत्त आत्मा, स्थिर विचार वाला, मोक्ष की इच्छा वाला, उद्यमी, शान्त एव धीर जन ध्यान मे प्रशस्त कहा जाता है।

यत्र रागादयो दोषा, अजस्र यान्ति लाघवम् ।
तत्रैव वसति साध्वी, ध्यान काले विशेषत ॥ १६७

अर्थ—जहा, रागादि दोष सतत लघुता को प्राप्त होते याने कम होते है, ऐसे ही स्थानो मे ध्यानी को रहना विशेष ठीक है, खासकर ध्यान के समय मे।

-ज्ञानी का हृदय-

यथामृगा मृत्युभयेनभीता, उद्धृत्य कर्णानकरन्ति निद्राम् ।
एव बुधा ज्ञान समन्विता हि, ससार-भीता न करन्ति पापम् ॥१६८

अर्थ—जैसे मृत्यु भय से डरे हुए मृग कान खोलकर निद्रा ग्रहण नहीं करते, ऐसे ही ज्ञानयुक्त विद्वान् जन्म मरण रूप ससार के डर से पाप नही करते हैं।

– बलवान् –

हस्ती स्थूल तनु स चाकुशवश किं हस्ति मात्रोऽङ्कुशो·
वज्रेणाभिहत· पतन्ति गिरय किं वज्रमात्रो गिरि ॥
दीपे प्रज्वलिते विनश्यति तम किं दीपमात्र तम ।
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु क प्रत्यय ॥ १६९

अर्थ—हाथी मोटे शरीर वाला होकर भी अ कुश का वशवर्ती होता है, तो क्या अ कुश हाथी के समान वडा है ? वज्र के प्रहार से पहाड टूटकर गिरते हैं तो क्या पर्वत वज्र इतना ही है ? दीप जलाए जाने पर अन्धकार नष्ट होता है तो क्या अन्धकार दीपक जितना ही है ? याने नही। अत बलवान वही है जिसमे तेज विराजमान है। बाहरी स्थूलता (मुटापे) का क्या विश्वास ?

स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति, सिंहा सत्पुरुषा गजा ।
तत्रैव निधन यान्ति, काका· कापुरुषा मृगा ॥ १७०

अर्थ—सिंह, सत्पुरुष और हाथी अपने स्थान को छोडकर बाहर जाते हैं। और कौआ कायर पुरुष एव मृग जहा जन्म लेते हैं, वही पर देह त्याग देते हैं।

– गुण ग्रहण –

वालादपि गृहीतव्य, युक्तियुक्त मनीषिभि ।
रवेरविषये वस्तु, किन्तु दीप प्रकाशयेत् ॥ १७१

अर्थ—विद्वानो को बालको से भी युक्तियुक्त कथन को ग्रहण करना चाहिए। सूर्य के अभाव मे क्या दीपक वस्तु को प्रकाशित नही करता ? अर्थात् रात मे दीप से ही काम लिया जाता है।

– आडम्वर –

असारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान् ।
नहि तादृग्ध्वनि स्वर्णे, यादृश कास्य भाजने ॥ १७२

अर्थ—असार पदार्थ का प्राय बडा आडम्बर होता है। स्वर्ण की आवाज वैसी नही होती जैसे कि कास्य पात्र की होती है।

– मूर्ख –

स्वर्ण स्थाले क्षिपति स रज पाद शौच विधत्ते,
पीयूषेण प्रवर करिण, वाहयत्यैन्ध-भारम्।
चिन्ता रत्न विकिरति कराद् वायसोड्डायनार्थम्,
यो दुष्प्राप गमयति मुधा मर्त्य-जन्म-प्रमत्त ॥ १७३

अर्थ—जो सोने की थाल मे धूल बिखेरता है, अमृत से पाव धोता है, बडे हाथी पर इन्धन ढोता है और कौए को उडाने के लिए चिन्तामणि रत्न को फेंकता है। इस तरह अति दुर्लभ मानव जीवन को जो व्यर्थ गवाता है, वह पागल–मूर्ख है।

मूर्खत्व हि सखे ममापि रुचित तस्मिन् यदष्टौ गुणा–
निश्चिन्तो बहुभोजकोऽति मुखरो रात्रि दिवा स्वप्न-भाक् ॥
कार्याकार्य-विचारणान्ध बधिरो मानापमाने सम ।
प्रायेणाऽमय वर्जितो दृढ वपु मूर्ख सुख जीवति ॥ १७४

अर्थ—हे मित्र! वह मूर्खता मुझे भी जचती है जिसमे कि ये आठ गुण हैं–निश्चिन्तता, बहु भोजन, अत्यन्त वाचालता, दिनरात सोना, काय अकार्य के विचार मे अन्धे और बहरे, मानापमान मे समभाव, प्राय रोगरहित और मजबूत शरीर। मूर्ख इन गुणो से सुख पूर्वक जीता है।

– उपदेश –

चेतोहरा युवतय स्वजनोऽनुकूल
सद्बान्धवा प्रणति गर्भ गिरश्चभृत्या ।
गर्जन्तिदन्ति निवहास्तरलास्तुरङ्गा,
समीलनेनयनयोर्नहिकिंचिदस्ति ॥ १७५

अर्थ—चित्त को हरने वाली युवतिया, अनुकूल स्वजन, अच्छे बन्धु, नम्रता भरे वचन बोलने वाले दास, गाजने वाले अनेको हाथी और चचल घोडे भी है, पर आखे मु द जाने पर ये सब कुछ भी नही हैं।

–मैत्री का रूप–

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ता पुरा तेऽखिला ।
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुत ॥
गन्तु पावकमुन्मनस्तदभवत् दृष्ट्वा तु मित्रापद ।
युक्त तेन जलेन शाम्यति सता मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ १७६

अर्थ—पहले दूध ने अपने साथ मिले हुए पानी को अपने समस्त गुण रग-रूप-रसादि दे दिये, फिर दूध पर गर्मी, ताप देखकर उस जल ने अपने आपको आग मे होम दिया—जला दिया। मित्र का सर्व-नाश देखकर आग मे जाने को उन्मन दूध को जल से ठडा किया जाता है, ठीक सज्जनो की मैत्री ऐसी ही होती है।

-कुपुत्र-

निरुत्साह निरानन्द निर्वीर्यमरिनन्दनम् ।
मास्म सीमन्तिनी नारी। पुत्रमीदृशम् ॥ १७७

अर्थ—उत्साह हीन, आनन्द रहित, निर्बल और शत्रु को प्रसन्न करने वाले पुत्र को कोई भी सुलक्षणा नारी उत्पन्न नही करे।

-कलियुग-

धर्म प्रव्रजितस्तप प्रचलित सत्यच दूरेगतम् ।
पृथ्वी मद फला नरा कपटिनश्चित्त च शाठ्योजितम् ॥
राजानोऽर्थपरा न-रक्षणपरा पुत्रा, पितुर्द्वेषिण ।
साधु सीदति दुर्जन प्रभवति प्राप्ते कलौ दुर्युगे ॥ १७८

अर्थ—धर्म तेजी से न्यस्त हो गया, तप चला गया, सत्य दूर देश को भाग छूटा, पृथ्वी अल्प फल देने वाली हुई, मनुष्य कपटी बन गए और हृदय शठता से भर गया। नृपतिगण धन के लोभी हुए किन्तु प्रजारक्षण कामी नही। पुत्र पिता से द्वेष करते, साधु दुःख पाता है, और दुर्जन का प्रभाव बढता है, दुर्युग-कलियुग के आने पर इतनी बातें होती है।

– जैन धर्म –

स्याद्वादो वर्तते यस्मिन्, पक्षपातो न विद्यते ।
नास्त्यन्यपीडन किञ्चित्, जैन धर्म स उच्यते ॥ १८०

अर्थ—जिस धर्म मे स्याद्वाद है और किसी तरह का पक्षपात नहीं है तथा थोडा भी पर-पीडन का भाव नही है, वही जैन धर्म कहाता है ।

– अप्रकाश्य –

अर्थं नाश मनस्ताप, गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चन चापमान च, मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ १८१

अर्थ—धन का नाश, मन का ताप, घर मे दुश्चारित्र्य ठगा जाना और अपमान इन सबको मतिमान् कही प्रकाशित न करे ।

– समान रग –

तिमिरारिस्तमोहन्ति, शकातकित मानसा ।
वय काका वय काका इति जल्पन्ति वायसा ॥ १८२

अर्थ—सूर्य अन्धकार नाश करता है और इधर समान रग की शका से डरा हुआ कौआ हम सब काक हैं, हम सब काक हैं ऐसा बोलता है । (प्रात काल सूर्योदय के समय काक वाणी पर यह उत्प्रेक्षा है ।)

– जरा –

अघ पश्यसि किं वृद्ध, किञ्चित्ते पतित भुवि ।
अरे मूढ ! न जानासि, गत तारुण्यमौक्तिकम् ॥ १७९

अर्थ—ऐ वृद्ध ! नीचे की ओर क्या देखते हो ? पृथ्वी पर क्या कुछ तुम्हारा गिर गया है ? इस पर वृद्ध ने कहा मूट ! नही जानते हो कि हमारा यौवन रूप मोती चला गया है।

वपु कुब्जी भूत गतिरपि तथा यष्टि शरणा,
विशीर्णा दन्तालि श्रवण विकल श्रोत्र-युगलम् ।
शिर शुक्ल चक्षुस्तिमिर पटलैरावृतमहो,
मनो मे निर्लज्ज तदपि विपयेभ्य स्पृहयति ॥ १८३

अर्थ—शरीर कूबडा हो गया और गति भी लाठी के अवलम्ब वाली बन गई। दत पक्तिया बिखर गयी,दोनो कान श्रवण-शक्ति से हीन बन गए, माथे सफेद हो गए, आखो पर अ धेरा छा गया, फिर भी मन मेरा निलज्ज है जो कि विषयाभिलाषी बना रहता है।

गात्र सकुचित गति विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि ।
दृष्टि नंश्यति वर्धने बधिरता वक्त्र च लालायते ॥
वाक्य नाद्रियते च बान्धव-जनै भार्या न शुश्रूषते।
हा कष्ट, पुरुषस्य जीर्ण-वयस पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥ १८४

अर्थ—शरीर सिकुड जाता, गति ढीली हो जाती, दत पक्तियाँ गिर जाती, आँख की शक्ति नष्ट हो जाती, वहरापन बढ जाता, मुख से लार टपकने लगती, बान्धव जन जिसकी बातो का आदर नही करते और न पत्नी ही सेवा करती, अधिक क्या वृद्धवय मे मनुष्य का पुत्र भी शत्रु की तरह व्यवहार करने लग जाता है।

कृतान्तस्य दूती जराकर्ण मूले,
समागत्य वक्तीतिलोका श्रृणुध्वम् ।
परस्त्री परद्रव्य वाञ्छा त्यजध्व,
भजध्व रमानाथ पादारविन्दम् ॥ १८५

अर्थ—यमराज या मृत्यु की दूती वृद्धावस्था कान की जड़ मे सफेद वालो के रूप मे आकर कहती है कि ऐ लोगो ! सुनो-दूसरे की स्त्री और परद्रव्य की इच्छा छोड दो तथा भगवान के चरण कमल को भजो।

– राज धर्म

शुचि भूमिगततोय, शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचि क्षेमकरो राजा, सतोषी ब्राह्मण शुचि ॥ १८६

अर्थ—पृथ्वी पर रहा हुआ जल पवित्र होता और पतिव्रता नारी पवित्र होती, क्षेमकर्ता-कल्याणकारी राजा भी पवित्र होता तथा सतोषी ब्राह्मण पवित्र होता है।

गणिका-गर्भ सभूतो वशिष्ठश्च महामुनि ।
तपसा ब्राह्मणो जात, सस्कारस्तत्र कारणम्॥ १८७

अर्थ—वेश्या के गर्भ से उत्पन्न वशिष्ठ महामुनि, तपस्या से ब्राह्मण हो गए, इसमे जाति नही सस्कार ही कारण है।

– मध्यम-भावना –

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदा ।
सेव्यन्ता मध्य भावेन, राजावह्नि गुरु स्त्रिय ॥ १८८

अर्थ—राजा, अग्नि, गुरु, और स्त्री ये अत्यन्त पास हो तो कोई फल नही मिलता है। अत मध्यस्थ भाव से इनका सेवन करना चाहिये।

अर्थ—ऐ वृद्ध ! नीचे की ओर क्या देखते हो ? पृथ्वी पर क्या कुछ तुम्हारा गिर गया है ? इस पर वृद्ध ने कहा मूर्ख ! नही जानते हो कि हमारा यौवन रूप मोती चला गया है।

वपु कुब्जी भूत गतिरपि तथा यष्टि शरणा,
विशीर्णा दन्तालि श्रवण विकल श्रोत्र-युगलम् ।
शिर शुक्ल चक्षुस्तिमिर पटलैरावृतमहो,
मनो मे निर्लज्ज तदपि विषयेभ्य स्पृहयति ॥ १८३

अर्थ—शरीर कूबडा हो गया और गति भी लाठी के अवलम्ब वाली बन गई। दत पक्तिया बिखर गयी, दोनो कान श्रवण-शक्ति से हीन बन गए, माथे सफेद हो गए, आखो पर अधेरा छा गया, फिर भी मन मेरा निलज्ज है जो कि विषयाभिलाषी बना रहता है।

गात्र सकुचित गति विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि ।
दृष्टि नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्र च लालायते ॥
वाक्य नाद्रियते च बान्धव-जनै भार्या न शुश्रूषते ।
हा कष्ट, पुरुषस्य जीर्ण-वयस पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥ १८४

अर्थ—शरीर सिकुड जाता, गति ढीली हो जाती, दत पक्तियाँ गिर जाती, आँख की शक्ति नष्ट हो जाती, बहरापन बढ जाता, मुख से लार टपकने लगती, बान्धव जन जिसकी बातो का आदर नही करते और न पत्नी ही सेवा करती, अधिक क्या वृद्धवय मे मनुष्य का पुत्र भी शत्रु की तरह व्यवहार करने लग जाता है।

कृतान्तस्य दूती जराकर्ण मूले,
समागत्य वक्तीतिलोका शृणुध्वम् ।
परस्त्री परद्रव्य वाञ्छा त्यजध्व,
भजध्व रमानाथ पादारविन्दम् ॥ १८५

अर्थ—यमराज या मृत्यु की दूती वृद्धावस्था कान की जड मे सफेद वालो के रूप मे आकर कहती है कि ऐ लोगो ! सुनो—दूसरे की स्त्री और परद्रव्य की इच्छा छोड दो तथा भगवान के चरण कमल को भजो ।

— राज धर्म

शुचि भूमिगततोय, शुचिर्नारी पतिव्रता ।
शुचि क्षेमकरो राजा, सतोषी ब्राह्मण शुचि ॥ १८६

अर्थ—पृथ्वी पर रहा हुआ जल पवित्र होता और पतिव्रता नारी पवित्र होती, क्षेमकर्ता-कल्याणकारी राजा भी पवित्र होता तथा सतोषी ब्राह्मण पवित्र होता है ।

गणिका-गर्भ सभूतो वशिष्ठश्च महामुनि ।
तपसा ब्राह्मणो जात , सस्कारस्तत्र कारणम् ॥ १८७

अर्थ—वेश्या के गर्भ से उत्पन्न वशिष्ठ महामुनि, तपस्या से ब्राह्मण हो गए, इसमे जाति नही सस्कार ही कारण है ।

— मध्यम-भावना —

अत्यासन्ना विनाशाय- दूरस्था न फलप्रदा ।
सेव्यन्ता मध्य भावेन, राजावह्नि गुरु स्त्रिय ॥ १८८

अर्थ—राजा, अग्नि, गुरु, और स्त्री ये अत्यन्त पास हो तो कोई फल नही मिलता है । अत मध्यस्थ भाव से इनका सेवन करना चाहिये ।

अर्थ—ऐ वृद्ध ! नीचे की ओर क्या देखते हो ? पृथ्वी पर क्या कुछ तुम्हारा गिर गया है ? इस पर वृद्ध ने कहा मूर्ख ! नही जानते हो कि हमारा यौवन रूप मोती चला गया है।

वपु कुब्जी भूत गतिरपि तथा यष्टि शरणा,
विशीर्णा दन्तालि श्रवण विकल श्रोत्र-युगलम् ।
शिर शुक्ल चक्षुस्तिमिर पटलैरावृतमहो,
मनो मे निर्लज्ज तदपि विषयेभ्य स्पृहयति ।। १८३

अर्थ—शरीर कूबडा हो गया और गति भी लाठी के अवलम्ब वाली बन गई। दत पक्तिया बिखर गयी,दोनो कान श्रवण-शक्ति से हीन बन गए, माथे सफेद हो गए, आखो पर अधेरा छा गया, फिर भी मन मेरा निलज्ज है जो कि विषयाभिलाषी बना रहता है।

गात्र सकुचित गति विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि ।
दृष्टि र्नश्यति वर्धने बधिरता वक्त्र च लालायते ।।
वाक्य नाद्रियते च बान्धव-जनै भार्या न शुश्रूषते।
हा कष्ट, पुरुषस्य जीर्ण-वयस पुत्रोऽप्यमित्रायते ।। १८४

अर्थ—शरीर सिकुड जाता, गति ढीली हो जाती, दत पक्तियाँ गिर जाती, आँख की शक्ति नष्ट हो जाती, बहरापन बढ जाता, मुख से लार टपकने लगती, बान्धव जन जिसकी बातो का आदर नही करते और न पत्नी ही सेवा करती, अधिक क्या वृद्धवय मे मनुष्य का पुत्र भी शत्रु की तरह व्यवहार करने लग जाता है।

कृतान्तस्य दूती जराकर्ण मूले,
समागत्य वक्तीतिलोका शृणुध्वम् ।
परस्त्री परद्रव्य वाञ्छा त्यजध्व,
भजध्व रमानाथ पादारविन्दम् ।। १८५

अर्थ—यमराज या मृत्यु की दूती वृद्धावस्था कान की जड मे सफेद वालो के रूप मे आकर कहती है कि ऐ लोगो ! सुनो—दूसरे की स्त्री और परद्रव्य की इच्छा छोड दो तथा भगवान के चरण कमल को भजो।

– राज धर्म

शुचि भूमिगततोय, शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचि क्षेमकरो राजा, सतोषी ब्राह्मण शुचि ॥ १८६

अर्थ—पृथ्वी पर रहा हुआ जल पवित्र होता और पतिव्रता नारी पवित्र होती, क्षेमकर्ता-कल्याणकारी राजा भी पवित्र होता तथा सतोषी ब्राह्मण पवित्र होता है।

गणिका-गर्भ सभूतो वशिष्ठश्च महामुनि ।
तपसा ब्राह्मणो जात , सस्कारस्तत्र कारणम् ॥ १८७

अर्थ—वेश्या के गर्भ से उत्पन्न वशिष्ठ महामुनि, तपस्या से ब्राह्मण हो गए, इसमे जाति नही सस्कार ही कारण है।

– मध्यम-भावना –

अत्यासन्ना विनाशाय, दूरस्था न फलप्रदा ।
सेव्यन्ता मध्य भावेन, राजावह्नि गुरु स्त्रिय ॥ १८८

अर्थ—राजा, अग्नि, गुरु, और स्त्री ये अत्यन्त पास हो तो कोई फल नही मिलता है। अत मध्यस्थ भाव से इनका सेवन करना चाहिये।

— दुर्जन —

सर्प दुर्जनयोर्मध्ये, वर सर्पो न दुर्जन ।
सर्पो दशति कालेन, दुर्जनस्तु पदेपदे ॥ १८६

अर्थ—साप और दुजन के बीच मे साप अच्छा है, दुर्जन नही । क्योकि साप तो समय पाकर डसता है किन्तु दुर्जन पद पद मे कष्ट देता है ।

तक्षकस्य विष दन्ते, मक्षिकाया विष शिर ।
वृश्चिकस्य विष पुच्छे, सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम् ॥ १६०

अर्थ—साप के दात मे विष होता है और मधु मक्खी के शिर मे एव विच्छू के पूछ मे तथा दुर्जन के सारे शरीर मे विष होता है ।

— काम —

विषस्य विषयाणाञ्च, दृश्यते महदन्तरम् ।
उपभुक्त विष हन्ति, विषया स्मरणादपि ॥ १६१

अर्थ—विष और विषय, (कामाभिलाषा) मे महान् अन्तर दिखाई देता है । विष तो खाने पर मारता किन्तु विषय, स्मरण मात्र से ही नष्ट करता है ।

— सत्स्वभाव —

वार्ताच कौतुकवती विमला च विद्या,
लोकोत्तर परिमलश्च कुरङ्गनाभे ।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणिदुर्निवार,
मेतत्त्रय प्रसरति स्वयमेव लोके । १६२

अर्थ—आश्चर्य भरी बाते, विशुद्ध विद्या, और कस्तूरी मृग के अलौकिक सुगन्ध ये तीनो जल मे तेल विन्दु की तरह, लोक मे अपने आप फैल जाते है।

– *किससे क्या सुशोभित होता ?* –

दरिद्रता धीरतया विराजते, कुरूपताशीलतया विराजते।
कुभोजन चोष्णतया विराजते, सुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते। १६३

अर्थ—दरिद्रता धैर्य से सुशोभित होती, कुरूपता सदाचार से, खराब भोजन उष्णता मे और कुवस्त्र स्वच्छता से सुशोभित होते है।

– *निन्दक* –

वक्तु नैव क्षमा जिह्वा, जजप्यते न तद् वरम्।
पर परापवादश्च, जजप्यते न तद् वरम्॥ १६४

अर्थ—अगर गूगे की जीभ बोलने मे समर्थ नही है तो यह श्रेष्ठ है, किन्तु दूसरे की निन्दा का बारम्बार कथन श्रेष्ठ नही है।

– पाण्डित्य के गुण –

गर्वनोद्वहते न निंदति पर नो भाषते निष्ठुर,
प्रोक्त केनचिदप्रियाणि सहते क्रोध च नालम्बते।
श्रुत्वा काव्यमलक्षण पर कृत सतिष्ठते मूकवत्,
दोषाश्छादयति स्वय न कुरुते पाण्डित्यमष्टौगुणा। १६५

अर्थ—गर्व नही करते, दूसरे की निन्दा नही करते, कठोर वचन नही बोलते, और कोई अप्रिय कहे तो उसे सह लेते, क्रोध नही करते, दूसरे के किए लक्षण रहित काव्य सुनकर मूक की तरह रहते,

दूसरे के दोषो को ढाकते तथा स्वय दोष नही करते, ये पाण्डित्य के आठ गुण है।

– पवित्रता –

मनो विशुद्ध पुरुषस्यतीर्थं, वाक् सयमश्चेन्द्रिय निग्रहश्च ।
त्रीण्येव तीर्थानि शरीरभाजा, स्वर्गं च मोक्ष च निदर्शयन्ति ।
१९६

अर्थ—मनुष्यो का तीर्थं मन की विशुद्धता, वाणी का सयम और इन्द्रियो का निग्रह है। शरीरधारियो के लिए ये तीन ही तीर्थ हैं, जो कि स्वर्ग और मोक्ष का दर्शन कराते है।

– स्त्री –

नून हि ते कविवरा विपरीत बोधा,
ये नित्यमाहुरबला इति कामनीस्ता ।
याभिर्विलोलतर तारक दृष्टि पातै ,
शक्रादयोऽपि विजिता स्त्वबला कथ ता । १९७

अर्थ—निश्चय ही वे कविगण विपरीत बोध वाले हैं, जिन्होने कि कामनी को नित्य अबला कहा है। जिसके चचल चितवन से शक्र आदि भी विजित हो गए। भला ! वह फिर अबला कैसे ?

– कर्तव्य –

त्यज कामार्थयो सङ्ग , धर्म ध्यान सदा भज ।
छिन्धि स्नेहमयान्, पाशान् मानुष्य प्राप्य दुर्लभम् । १९८

अर्थ—अर्थ और काम का सग छोड सर्वदा धर्म ध्यान करो, और दुर्लभ मनुष्य जीवन पाकर स्नेहमय पाश को काट डालो ।

ददतु ददतु गालि गालिवन्तो भवन्त,
वयमिह तदभावाद् गलिदानेऽप्यशक्त ।
जगद् विदितमेतद्दीयते विद्यमान,
नहि शशक विषाण कोऽपि कस्मै ददाति ॥ १९९

अर्थ—आप हमे गाली देवें, इससे आपही गाली वाले गिने जाए गे । हम तो यहा गाली के अभाव मे गाली देने मे असमर्थ है। ससार मे प्रसिद्ध है कि जो जिसके पास होता है, वही देता है। शशक श्रृ ग कोई किसी को नही देता।

— उद्बोधन —

पुन प्रभात पुनरेव शर्वरी,
पुन शशाङ्क पुनरुद्यतेरवि ।
कालस्य किं गच्छति याति यौवन,
तथापि लोक कथित न बुध्यते ॥ २००

अर्थ—फिर से सवेरा और पुन रात हो आती है। पुन' चन्द्र और फिर से सूर्य उग जाते है। इसमें काल का क्या जाता है? जाती तो हमारी जवानी है, नित्य इस परिवर्तन को देखकर, फिर भी मनुष्य आध्यात्मिक कथन को नही समझता है?

●●

३

उर्दू–सूक्ति

– साहस –

हमको मिटा सके, यह ज़माने मे दम[1] नही।
हमसे ज़माना खुद है, ज़माने से हम नही॥ जिगर

जिन्दगी की नाव को मस्ती से खेना चाहिए।
दुनिया के हर ऐशोग़म[2] का साथ देना चाहिए॥ मजर

हस के दुनिया मे मरा कोई, कोई रोके मरा।
जिन्दगी पाई मगर उसने जो कुछ होके मरा॥ अकबर

काट लेना हर कठिन मंजिल का कुछ मुश्किल नही।
इक जरा इन्सान मे चलने की आदत चाहिए॥ चकबस्त

मैं कहता था इन्सान की गर तकदीर नही तो कुछ भी नही।
हिम्मत बढकर बोल उठी, तदबीर नही तो कुछ भी नही।

पस्त–हिम्मत रोते रहते है सदा तकदीर को।
साहिबे–हिम्मत हमेशा करते है तदबीर को॥ अमीर

---

१ - बल-शक्ति   २ - सुख दुःख

मजिले-राहे-हकीकत को बताने के लिए।
छोड जा नक्शे-कदम औरो को आने के लिए॥

हजरे अहले-हिम्मत, आबरू खोना नही आता।
गमे-हस्ती१ पे हसने के सिवा रोना नही आता॥ जोश

मुस्करा के जिनको गम का घूट पीना आगया।
यह हकीकत है जहा मे, उनको जीना आगया॥

कमाले बुजदिली है पस्त, होना अपनी आँखो मे।
अगर थोडी सी हिम्मत हो तो फिर क्या हो नही सकता॥

जरा दरिया की तह तक, पहुँच जाने की हिम्मत कर।
तो फिर ऐ डूबने वाले, किनारा ही किनारा है॥ माहिर

सर शमा सा कटाइए, पर दम न मारिए।
मजिल हजार दूर हो, हिम्मत न हारिए॥ आजाद

फिजाओ२ पे परचम३ उडाता चला जा,
हवाओ मे हलचल मचाता चला जा।
जमाना तेरे साथ आएगा, लेकिन,
जमाने को पीछे हटाता चला जा॥

वही हकदार हैं किनारो के, जो बदलदे बहाव धारो के। निसार इटावी

हुआ करती है दुश्वारी से ही आसानिया पैदा।
बडे नादान है मुश्किल को जो मुश्किल समझते है। साहिर

सच पूछो तो इस दुनिया मे हरकत४ मे ही बरकत है।
जिसने कुछ ढूढा होगा तो उसने कुछ पाया होगा॥ अकरम

जहाजो को डुबो दे जो उसे तूफान कहते है।
जो तूफानो से टक्कर ले, उसे इन्सान कहते हैं। अकरम

१-दुख के अस्तित्व २-वातावरण ३ पताका ४-श्रम साहस

हो अज्म१ तो सब काम सवरजाते है,
डूबे हुए दिल खुद ही उभर आते है।
जिस राह पै फरिश्तो२ को हो चलना मुश्किल,
उस राह से इन्सान गुजर जाते है।। जौक

गर चाहते हो दहर३ मे मैदान मारना।
दुश्वारिया हजार हो, हिम्मत न हारना।।

मिल नही सकती निकम्मो को जमाने मे मुराद४।
कामयाबी की जो ख्वाहिश हो तो मिहनत चाहिए।। आतिश

थके जो पाव तो चल सर के बल न ठहर आतिश।
गुले-मुराद५ है मजिल मे, खार राह मे।। आतिश

बहादुर पर्वतो को धूल ही केवल समझते है।
वह तूफानो को हर इक मौज को मजिल समझते है।
कही जाकर नही है खोजनी पडती उन्हे मजिल।
जहा वह पाव रखते है, वही मजिल समझते है।। अश्कर

कसरत-गम६ मे भी चेहरे पर बहाली७ चाहिए।
सामने नजरो के तस्वीरे८-खयाली चाहिए।। हकीम

गाए जा मस्ती के तराने, ठडी आहे भरना क्या ?
मौत आए तो मर भी लेंगे, मौत से पहले मरना क्या ? जोश

याद रख इस गुर को आठो पहर चौंसठ घडी।
खार९ चुभता है जिसे बस फूल पाता है वही।। लतीफ

जिन्दगी हर मोड पर मुझको यह देती है सदा१०।
फिक्रे फर्दा११ छोडिए, तामीरे-फर्दा कीजिए१२।। दानिश

---

१ - समृद्धि २ - साहस, सकल्प ३ - देवो ४ - ससार ५ - अभिलषित ६ - आशा का फल ७ - दुःखाधिक्य ८ - प्रसन्नता ९ - विचारो का चित्र १० - काटा ११ - आवाज १२ - भविष्य चिन्ता १२ - भविष्य निर्माण

कदम चूम लेती है, खुद आके मंजिल ।
मुसाफिर अगर आप हिम्मत न हारे ।। अनवर

दिल का चिराग जबतलक तुझसे जले जलाए जा ।
रात भी है अगर तो क्या रात को दिन बनाए जा ।। मुल्ला

खुदा ने आज तक उस कौम की हालत नही बदली ।
न हो खुद जिसको एहसास अपनी हालत बदलने का ।।

जौके-करम[1] नही है तावे[2] जफा नहीं है ।
बुजदिल को जिन्दगी का कोई मजा नही है ।। जोश

तुझे न माने कोई, तुझको इससे क्या मजरुह ।
चल अपनी राह, भटकने दे नुक्ताचीनो[3] को ।।

– सच्चा प्रेम –

छोड सबकी दोस्ती, कर दोस्तदारी एक की ।
एक हो गर यार, निभ जाएगी यारी एक की ।। जफर

इश्के[4] सादिक जिसको कहते है, वोह परवाने मे है ।
जिन्दगी का लुत्फ[5] , जिसको जल के मर जाने मे है ।

देख परवाना कभी राहे गलत चलता नही ।
छोड कर दीपक को वह आग मे जलता नही ।। सीमाब

दूई का पर्दा फाडकर, करदे गाफिल तार तार ।
और अपने आसुओ का ले गले मे डाल हार ।। भोलानाथ

समा जाए जो नजरो मे, उसे तसवीर कहते है ।
कलेजे मे जो चुभ जाए, उसी को तीर कहते है ।। जिगर

---

१ - कृपा का शौक २ - अत्याचार की शक्ति ३ - आलोचको को ४ - सच्चा प्रेम
५ - मजा

इश्क की माला का इर, माना बिखर सकता नहीं ।
तिहादे बातिनी१, मरन से मर सकता नहीं ।। जोश

कैदे-हस्ती में कोई जर्रा२ रिहा होता नहीं ।
टूट जाता है कफस३ ताइर-फना।४ होता नहीं ।। जोश

ऐ अमीर अव्वल तो वह आश।।५ मिलता नहीं ।
मिल गया जिसको कहीं, उसका पता मिलता नहीं

दिल अगर है साफ कुछ मुश्किल नहीं दादारे-यार६ ।
देखलो आईना सूरत-आश्ना क्योंकर हुआ ।। अमीर

तुझे देखा तो अब कुछ देखने को जी नहीं चाहता ।
किए है बन्द आखें तेरी सूरत देखने वाले । हनीफ

गुल से पूछिए न किसी गुलची७ से पूछिए ।
सदमा चमन के लूटने का बुलबुल से पूछिए ।। तालीब

– नश्वर-जीवन –

कह रहा है आसमा, यह सब समा कुछ भी नहीं
पीस दूगा एक गर्दिश८ में जहा कुछ भी नहीं । जौक

घर कौन सा बसा कि जो वीरा न हो गया ।
गुल कौन सा हुआ कि परेशा न हो गया । दबीर

बता अय खाक के पुतले ! कि दुनिया मे किया क्या है
गरज जिसके लिए आया उसे पूरा किया क्या है ?

जबा चलती है गोया आज कुछ जिक्रे खुदा करले ।
अजल९ आएगी फिर हर्गिज न देगी बात की फुर्सत । हाली

---

१ - अन्तरंग सम्बन्ध २ - परमाणु ३ - पिंजड़ा ४ - पक्षी ५ - सच्चा प्रेमी
६ - प्रेमी मिलन ७ फूल चुनने वाला ८ - चक्कर ९ - मृत्यु

चन्द रोजा है जमाने मे बहारे जिन्दगी,
फिर तो आगे जिन्दगी है, खार जारे जिन्दगी ।

मौत आने पर न आए मौत ऐसा काम कर,
छोड जा दुनिया मे कोई यादगारे जिन्दगी । 'आसी'

चार दिन की जिन्दगी मे आपको है अख्तियार ।
दोस्ती कर लीजिए या दुश्मनी कर लीजिए । 'बिस्मिल'

कभी मुस्कराहट, कभी चश्मे[1] पुरनम ।
बस इतना सा है, जिन्दगी का फसाना । 'मलमा'

बुलबुला पानी पै उट्ठा और मिटकर यह कहा ।
यह मआले[2] जिन्दगी है, यह है राजे-जिन्दगी[3] । 'असर'

कौन सा झोका बुझा देगा किसे मालूम है ।
जिन्दगी इक शमअ-रोशन[4] है, हवा के सामने । 'सराज'

इधर आख झपकी, उधर ढल गई वह ।
जवानी भी इक धूप थी, दोपहर की ।। 'इशरत'

दारे-फानी मे हो गाफिल मौत से इक पल नही ।
क्या भरोसा जिन्दगी का आज है और कल नही । 'जौक'

कहा फूल ने देख मेरा तबस्सुम[5] ।
मेरी जिन्दगी किस कदर मुख्तसर[6] है

— दयालुता —

कोई रोता नजर आए तो आंसू पोछ दामन[7] से ।
मदद बेकस[8] की कर दामो-दिरम[9] से जानसे दिल से ।

---

१ - अश्रु २ - अन्त ३ - जीवन का रहस्य ४ - जलती मोमबत्ती ५ - मुस्कान
६ - छोटा ७ - आचल ८ - असहाय ९ - रुपए पैसे से

अगर तेरे दिल में दया ही नहीं ।
समझले तुझे दिल मिला ही नहीं ॥

मत सता जालिम किसी को, मत किसी की आह ले ।
दिल के दुख जाने से नादां अर्श[१] भी हिल जाएगा ॥ 'सागर निजामी'

किसी का रंज देखूं, यह नहीं होगा मेरे दिल से ।
नजर सैयाद[२] की झपके, तो कुछ कहदूं अनादिल[३] से ॥ 'साकिब'

किसी की आंख तर देखूं तो, अश्क आंखों से जारी हो ।
किसी को बेकरारी से, मुझे भी बेकरारी हो ।

मुबारक है, जो दिल में दूसरों का दर्द रखते हैं ।
जो आंसू आंख में और लब[४] पै आहें-सर्द रखते हैं ॥ 'मुनव्वरलखनवी'

जो पार उतारे औरों को, उसकी भी नाव उतरती है ।
जो गर्क करे फिर उसकी भी, यहां डुबकी डुबकी करती है ॥

उदासे नयन जिस किसी के भी पाओ ।
उसी को हँसा कर गले से लगाओ ॥

फकीरों की निगाहों में अजब तासीर होती है ।
निगाहे-मेहर से देखें तो खाक अक्सीर होती है ॥

वह आंख आंख नहीं, वह दिल दिल नहीं ।
जिसे किसी की मुसीबत नजर नहीं आती ॥

– मृत्यु –

मौत क्या है, जिन्दगी की दूसरी तस्वीर है ।
जिसने इस रुख से इसे देखा वह कामिल हुआ ॥ 'फानी'

---

१ - आसमान जैसा बड़ा २ - शिकारी ३ - बुलबुल ४ - होठ ।

मौत को देखा तो दुनिया से तबिअत फिर गई।
उठ गया दिल दह्र से दौलत नजर से गिर गई ।। 'अकबर हैदरी'

जीने मरने की हकीकत, जब से हम पर खुल गई।
जिन्दगी और मौत दोनों, का मजा जाता रहा।

कुछ हवा भर दी गई है, खाक की तामीर[१] में।
मौत हँसती है मेरी, हस्ती का सामा देख कर ।। जिगर'

मौतका झटका लगा, ऐसा कि आखें खुल गई।
रूबरू[२] जर[३] है ख्वाबे[४], जिस्त की तामीर का ।। 'रोशन'

सब जीते जी के झगडे है, सच पूछो तो क्या खाक हुए।
जब मौत से आकर काम पडा सब किस्से कजिए पाक हुए।

मौत यह मेरी नही, मेरी कजा की मौत है।
क्यो डरू इससे कि फिर मर कर नही मरना मुझे ।।

जो उठा मरने से वह, जिसकी खुदा पर थी नजर।
जिसने दुनिया ही को पाया था, वह सब खो के मरा ।। 'अकबर'

मरते मरते कह गया लुकमान सा दाना हकीम।
दर हकीकत मौत की, यारो ! दवा कुछ भी नही ।।

फकीरो से सुना है हमने 'हातिम'।
मजा जीने का मर जाने मे देखा ।। 'हातिम'

मौत जब तक नजर नही आती।
जिन्दगी राह पर नहीं आती ।। 'जिगर'

जिन्दगी बैठी थी अपने हुस्न पर भूली हुई।
मौत ने आते ही सारा रग फीका कर दिया ।। 'अख्तर

---

१ - आकृति २ - सामने ३ - हृदय ४ - स्वप्नतुल्य जीवन

कौन ऐसा है नही मौत की जिसको खबर ।
फिर जो गफलत है तो यह दुनिया का इक दस्तूर है ।।

जब तलक आखे खुली है, दु ख पै दु ख देखेंगे यार ।
मु द गयी जब अखडिया तब ',मोज'' सब आनन्द है ।।

— भाग्य —

मुकद्दर का लिखा मिटता नही आसू बहाने से ।
यह वह होनी   जो होकर रहेगी हर बहाने से । 'साहिर'

इन्सान समझता है कि तदबीर है सब कुछ ।
मजबूरिया कहती है कि तकदीर भी कुछ है । 'अर्श'

हमारी अक्ले-बेतदबीर१, पर तदबीर हँसती है ।
अगर तदबीर हम करते है, तो तकदीर हँसती है ।

उस वक्त मुसाफिर बेचारा अपनी किस्मत को रोता है ।
जब डूबने लगती है किश्ती, नजदीक किनारा होता है ।

किस्मत मे जो लिखा है, वह आएगा आपसे ।
फैलाइए न हाथ, न दामन पसारिए । 'आतिश'

बनने के बाद जिसको बिगडना नही पडा ।
ऐसा कभी किसी का मुकद्दर कहा बना । 'मुनव्वर'

जो मुकद्दर है वह टल सकता नही "गालिब" कभी ।
तेरी किस्मत का तुझे मिलता है छप्पर फाडके ।।

अगर तकदीर भी अच्छी हो, तब तदबीर बनती है ।
बुरा गर हो कलम कब ठीक फिर तस्वीर बनती है । 'अमीर'

---

१ - पौरुषहीन बौद्धिक ज्ञान

काम सब तकदीर पर है, है मगर तदबीर शर्त ।
कुछ सबब भी चाहिए, इस आलमे-असबाब१ मे ।

नही कानूने फितरत है जिसे तकदीर कहते हैं ।
जिसे किस्मत समझते हैं, वह तदबीरो का हासिल है ।।

— निस्पृह —

दुनिया मे हूँ दुनिया का तलबगार नही हूँ ।
बाजार से गुजरा हूँ, खरीददार नही हूँ ।। 'गालिब'

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब२ करते थे हम ।
अब जो नफरत हमने की, वह बेकरार आने को है ।।

दुनिया का तरद्दुद३ तबतक था जब तक हम उसके तालिब४ थे ।
फेरी जो नजर गम हो गए कम रगबत५ न रही दुनिया न रही ।।

सच पूछिए तो राहत ही मिली, दुनिया से जुदा हो जाने मे ।
थोडी सी उदासी हो भी तो हो, आफत तो मगर बरपा६ न रही ।

खुदा के वास्ते दुनियाए७-दू से मुह जो मोडे है ।
वही हैं मुस्तनद८-इन्सान, मगर अफसोस थोडे है । 'नासिख'

बे दरोदीवार सा, इक घर बनाना चाहिए ।
कोई हमसाया९ न हो और पासबा१० कोई न हो । 'गालिब'

हकीकत मे जगह दुनिया, नही है दिल लगाने को ।
वफा करती नही बेवफा सारे जमाने की ।।

बेकसो-मजबूर इसा को दुआ देता हू मैं ।
वार करता है कोई,तो मुस्करा देता हूँ मै ।।'जोश'

---

१ काय कारण रूप ससार २ - इच्छा ३ - दुख ४ - इच्छुक ५ - आसक्ति
६ - व्याप्त ७ - ससारसे ८ - प्रमाणिक ९ - पडोसी १० - रक्षक

है कामयाव वही इस जहाने[१]-फानी मे ।
जो वेनियाजे[२]-तमन्ना है जिन्दगानी मे ।

– अहिंसा –

किसी को हम न रौंदेंगे अगर राहे-तरक्की मे ।
तो हर इक खाक के जर्रे को दामनगीर[३] देखेंगे ।।

इसी का नाम जीना है, जिगर खू हो तो हो जाए ।
नक्शे-दहर[४] मे इक,खास अपना रग-भरता जा ।।

अहिंसा से है ऐ गाफिल ! कयामे-आलमे[५]-इमका ।
जो यह दुनिया से उठेगी, तो दुनिया भी नही होगी ।।

अहिंसा का मतलव वही जानते है ।
जो इन्सा को अपना खुदा मानते है । 'अमीर'

किया तसलीम[६] यह मैंने, अहिंसा नाम है मेरा ।
सितम[७] सह लेना, गम खाना अगर्चे[८] काम है मेरा ।

– सत्य –

हकीकत की तरफ अपना कदम जितना बढाता हूँ ।
जिसे नजदीक समझा था, उसी को दूर पाता हूँ । 'इकबाल'

सदाकत हो तो, दिल सीने से खिचने लगते है ऐ वाइज[९] ।
हकीकत खुदको मनवा लेती है, मानी नही जाती । 'जिगर'

हो सदाकत के लिए जिस दिल मे मरने को तडप ।
पहले अपने पैकरे-खाकी[१०] मे जा पैदा करे ।। 'इकवाल'

---

१ - क्षणभगुर ससार में २ - निस्पृह ३ - आँचल पकड कर चलने वाले ४ - ससार के मानचित्र ५ - अस्तित्व ६ - स्वीकार ७ - अत्याचार ८ - सच्चे ढग मे ९ उपदेशक १० - मिट्टी के बने शरीर मे

छिपाओ आपको जिसढग या जिस भेस मे ।
मगर चश्मे हकीकतवी से पर्दा हो नही सकता । 'साकिब

— समय का मोल —

जिसने पहचानी न कोई कद्र अपने वक्त की ।
कामयावी उसको हासिल हो नही सकती कभी ॥ 'दाग'

जब खजाना लुट गया, तब होश मे आये तो क्या ?
वक्त खोकर दस्ते हसरत[1], मल के पछताये तो क्या ? 'हाली'

ऐ वक्त वक्त प्यारे ! पछता रहे है खोकर ।
मुमकिन नही है अब तो, मरकर भी हो मुयस्सर[2] ॥ 'हिदायत'

वक्त पर कतरा है काफी, आबे–खुश–अ जाम का ।
जब कि खेती जल गई, वरसा तो फिर किस काम का । 'हिदायत'

दो दिन ऐसे है कि जिनकी फिक्र मैं करता नही ।
एक जो आया नही है, दूसरा जो हो चुका ॥ 'कातिल'

— दुर्भाग्य —

सियह[3] वख्ती मे कब कोई किसी का साथ देता है ।
कि तारी[4] की मे साया[5] भी जुदा हो जाते हैं । 'नासिख'

भरी दुनिया मे कोई भी नजर आता नही अपना ।
अदीब इक दौर ऐसा भी गुजर जाता है इन्सा पर । 'अदीब'

किस्मत की शिकायत किससे करें, वह बज्म मिली है हमको जहा ।
राहत के हजारो साथी हैं, दु ख दर्द का साथी कोई नही ।
'नजीर बनारसी'

---

१ - अतृप्त कामना के हाथ २ - प्राप्त ३ - विपत्ति काल मे ४ - अधेरे में ५ - छाया

आराम के साथी है क्या क्या, जब वक्त पडा तब कोई नही।
सब दोस्त है अपने मतलब के, दुनिया मे हमारा कोई नही। 'आर्जू'

कौन हम दर्द किसका है जहा मे अकबर।
इक उभरता है यहा, एक के मिट जाने से।

अक्ल से क्या पूछना, आफत जो सर पे देखकर।
वह तो खुद चकरा गई, किस्मत का चक्कर देख कर। 'अर्श'

न इतराइए देर लगती है क्या ?
जमाने की करवट बदलते हुए।

हसरत पे उस मुसाफिरे बेकस को रोइए।
जो थक गया हो बैठके मजिल के सामने ।। 'मसहफी'

होता नही है कोई बुरा वक्त मे शरीक।
पत्ते भी भागते है खिजा१ शजर२ से दूर ।।

पुतलिया तक भी तो फिर जाती हैं देखो दम निजा।
वक्त पडता है तो सब आख चुरा जाते है। 'अमीर'

जिसे हम नाग समझे थे, गला अपना सजाने को।
वह काला नाग बन बैठा, हमारे काट खाने को। 'कातिल'

वही हम थे कि जो रोतो को हँसा देते थे।
अब वही हम है कि थमता नही आसू।

कौन होता है दिले-अफसुर्दा का पुरसाने३-हाल।
फूलकी खुशबू भी चल देती है मुर्झाने के बाद।

मखमली गद्दो पे जिनको नीदतक आती न थी।
एक पत्थर है फकत उनके सिरहाने के लिए।

---

१ - पतझड २ - वृक्ष ३-उदास, दुखी दिल।

जिनके लगर[1] रात दिन जारी[2] थे भूना के लिए ।
आज वोह मुहताज है वम दाने दान के लिए । 'ग़ाफ़िल'

क्या सूरमा भरी आंखो से आंसू नही गिरते ।
क्या मेहदी लगे हाथो से मातम नही होता । 'रियाज'

सभी हँसते हुए मिलते है जब तक चार पैसे हैं ।
न पूछेगा गरीबी मे कोई भी आप कैसे है । 'अकबर'

यार ओ गमख्वार[3] हैं दुनिया मे बनी के साथी ।
जब बिगडती है तो सब आख चुराजाते है । 'बेखुद'

— मानवता —

हो न कुछ इन्सानियत, इन्सा मे फिर इन्सान क्या ?
ऐ जफर गर्चे हुआ जाहिर मे वह इन्सा की शकल । 'जफर'

न हो कुछ भी अमल और हो किताबो से लदा ।
जफर उस आदमी को हम तसव्वुर[4] बैलकहते है ।

न दौलत याद आती है न गम होता है सरवत[5] का ।
जिसे रोती है दुनिया, वह है जौहर[6] आदमीयत का ।।

दर्देदिल पासेवफा[7] जजबए-ईमा होना ।
आदमीयत है यही ओ यही इन्सा होना ।।

वर्क उसकी जिन्दगी है, दर हकीकत जिन्दगी ।
जिसको दुनिया मे सकूने-कल्ब[8] हासिल हो गया ।।

जो फरिश्ते करते है, कर सकता है इन्सान भी ।
पर, फरिश्तो से न हो, जो काम है इन्सान का ।।

---

१ - भण्डार २ - बालू ३ - साथी ४ - ख्याली ५ - पूजी ६ - खूबी ७ - प्रीति का बर्ताव ८ - मन की शान्ति

आओ वोह मूरत निकाले, जिसके अन्दर जानहो ।
आदमीयत दीन हो, इन्सानियत ईमान हो । 'जोश'

जो भले है, वह बुरो को भी भला कहते हैं ।
अच्छे न बुरा सुनते है, न बुरा कहते है । 'हाली'

मुसीबत हो कि राहत हो, नही लाजिम गिला करना ।
बशर का फर्ज है, हर हाल मे शुक्रे खुदा करना ।। 'ताहिर'

आदम को खुदा मत कहो आदम खुदा नही ।
लेकिन खुदा के नूर से, आदम जुदा नही ।

– प्रसन्नता –

हर हुक्म मे हूँ राजी, हर हाल मे हूँ खुश ।
कुछ है अगर तो यह है दुनिया मे शादमानी[१] । 'हाली'

आदमी दुनिया मे खुश हरदम नही तो कुछ नही ।
दम के हैं सब दमदमे, जब दम नही तो कुछ नही । 'हश्र'

आजादगी मे खुशरहो, जजाल मे भी शाद हो ।
इस हाल मे भी शाद हो, उस हाल मे भी शाद हो ।। 'नजीर'

जिन्दगी करती ही रहती है मुसीबत पैदा ।
बाखुदा इसमे भी कर लेते है लज्जत पैदा 'अकबर'

आदमी खुश-खू[२] नही तो कुछ नही ।
फूल मे गर बू नही तो कुछ नही । 'अदीब'

राजी रहे बशर जो गरीबी के हाल मे ।
पाये मजा पुलाव का अरहर की दाल मे । 'हफीज'

---

१ - खुशी २ - प्रसन्न

दिल दे तो इस मिजाज का परवरदिगार दे।
जो रज की घडी भी, खुशी मे गुजार दे। 'दाग'

— स्वार्थ —

खुदाई अपने मतलब की, जमाना अपने मतलब का।
किसी का साथ देता है, जमाने मे कहा कोई। 'अमीर'

जहा जाओ जहा पहुँचो, फसाना है खुशामद का।
खुदाई है खुशामद की, जमाना है खुशामद का॥

दीन जाता है तो जाए, सेठजी को गम नही।
मालोजर अच्छी तरह, दुनिया मे पैदा कर लिया। 'अकबर'

इबादत करते हैं जो लोग जन्नत की तमन्ना मे।
इबादत तो नही है इक तरह की वोह तिजारत है। 'जोश'

— सफल जीवन —

सू घ कर मसल डाले तो यह है गुल की जीस्त१।
मौत उसके वास्ते डाली पे कुम्हलाने मे है। 'मुल्ला'

नही वह जिन्दगी, जिसको जहा नफरत से ठुकराए।
नही वह जिन्दगी जो मौत के कदमो पै झुकजाए॥
वही है जिन्दगी जो नाम पाती हैं भलाई मे।
खुदी को छोड कर पहुच जाती है खुदाई मे॥ 'रजम'

जिन्दगी है फर्ज२ अदा करने का नाम।
जिन्दगी है फर्ज पै मरने का नाम। 'नजर'

---

१ - जिन्दगी २ - कर्तव्य

आओ वोह मूरत निकाले, जिसके अन्दर जान हो ।
आदमीयत दीन हो, इन्सानियत ईमान हो । 'जोश'

जो भले है वह बुरो को भी भला कहते हैं ।
अच्छे न बुरा सुनते है न बुरा कहते है । 'हाली'

मुसीवत हो कि राहत हो, नही लाजिम गिला करना ।
बशर का फर्ज है, हर हाल मे शुक्रे खुदा करना ।। 'ताहिर'

आदम को खुदा मत कहो आदम खुदा नही ।
लेकिन खुदा के नूर से, आदम जुदा नही ।

– प्रसन्नता –

हर हुक्म मे हूँ राजी, हर हाल मे हूँ खुश ।
कुछ है अगर तो यह है दुनिया मे शादमानी[1] । 'हाली'

आदमी दुनिया मे खुश हरदम नही तो कुछ नही ।
दम के हैं सब दमदमे, जब दम नही तो कुछ नही । 'हश्र'

आजादगी मे खुश रहो, जजाल मे भी शाद हो ।
इस हाल मे भी शाद हो, उस हाल मे भी शाद हो ।। 'नजीर'

जिन्दगी करती ही रहती है मुसीबत पैदा ।
बाखुदा इसमे भी कर लेते है लज्जत पैदा 'अकबर'

आदमी खुश-खू[2] नही तो कुछ नही ।
फूल मे गर बू नही तो कुछ नही । 'अदीब'

राजी रहे बशर जो गरीबी के हाल मे ।
पाये मजा पुलाव का अरहर की दाल मे । 'हफीश'

---

१ - खुशी २ - प्रसन्न

दिल दे तो इस मिजाज का परवरदिगार दे।
जो रंज की घड़ी भी, खुशी मे गुजार दे। 'दाग'

— स्वार्थ —

खुदाई अपने मतलब की, जमाना अपने मतलब का।
किसी का साथ देता है, जमाने मे कहा कोई। 'अमीर'

जहा जाओ जहा पहुँचो, फसाना है खुशामद का।
खुदाई है खुशामद की, जमाना है खुशामद का॥

दीन जाता है तो जाए, सेठजी को गम नही।
मालोजर अच्छी तरह, दुनिया मे पैदा कर लिया। 'अकबर'

इबादत करते हैं जो लोग जन्नत की तमन्ना मे।
इबादत तो नही है इक तरह की वोह तिजारत है। 'जोश'

— सफल जीवन —

सू घ कर मसल डाले तो यह है गुल की जीस्त१।
मौत उसके वास्ते डाली पे कुम्हलाने मे है। 'मुल्ला'

नही वह जिन्दगी, जिसको जहा नफरत से ठुकराए।
नही वह जिन्दगी जो मौत के कदमो पै झुकजाए॥
वही है जिन्दगी जो नाम पाती है भलाई मे।
खुदी को छोड कर पहुच जाती है खुदाई मे॥ 'रज्म'

जिन्दगी है फजर अदा करने का नाम।
जिन्दगी है फर्ज पै मरने का नाम। 'नजर'

---

१ - जिन्दगी २ - कर्तव्य

निशा पाते है, पहले जो निशा अपना मिटाते है।
खुद अपना नाश करें, बीज फिर फल फल पाते हैं। 'सफी'

हमको लगा है हाथ यह मजमू१ चिराग में।
रौशन हो नाम उसका जो अपना जलाए दिल॥

पाव आराम२ न फैलाये है उसने अपने।
हाथ दुनिया में 'जफर' जिसने यहा खीच लिया।

लज्जत का तर्क३ कर तो दुनिया का रज दूर।
परहेज भी दवा है जो बीमार ने किया। 'आतिश'

इन्सान को लाजिम है, रहे दूर रिया४ से।
यह चीज जुदा करती है बन्दे को खुदा से॥'जिगर'

खुदी५ को कर बुलन्द६ इतना कि हर तकदीर से पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा७ क्या है। 'इकबाल'

फिक्रे राहत छोड बैठे, हमको राहत मिल गई।
हमने किस्मत से लिया, जो काम था तदवीर का। 'अर्श'

उस परिन्दे की तरह दुनिया मे रहना चाहिए,
चहचहाता है खुशी से जोकि नाजुक-शाख पर।
झूलती है शाख लेकिन कुछ खतर उसको नही,
गिर नही सकता कि हैं मोजूद उड जाने को पर। 'अकबर'

शिवाले की जानिब८ कदम क्यो बढाऊ ?
नजर किस लिए सूए मस्जिद करू मैं।
मेरे दिल को अल्लाह आबाद रक्खे,
मेरा दिल ही मस्जिद, है दिलही शिवाला॥ 'नहनाखी'

---

१ - लेख २ - सासारिक सुख ३ - त्याग ४ - कपट ५ - अहं ६ - ऊंचा
७ - इच्छा ८ - तरफ

जब दोस्त भी जहा मे निभाये न दोस्ती ।
दुश्मन से फिर हमे गिलए[१]-इन्तकाम क्या ? 'मुनव्वर'

दुश्मनो ने क्या बुराई की, जो कीनी दुश्मनी । ६
दोस्तो ने दोस्ती मे दिल के टुकडे कर दिये ।। 'शाद'

– वाणी सयम –

जो रखता है काबू मे दानिश जबा को ।
बना लेगा अपना वह सारे जहा को ।। 'दानिश'

मुसीबत का हर इक से अहवाल कहना ।
मुसीबत से है यह मुसीबत जियादा ।। 'हाली'

खामोशी मे अमन है, शान्ति है और सफाई है ।
यह वह दारू है जो कितने मर्जो की दवाई है । 'जफर'

बहुत नाजुक जमाना है, जबा को बन्द कर रक्खो । ६
मसल मशहूर है, दीवार के भी कान होते है । 'अहमदी'

दुश्मन से भी रवा[२] है तुमको जबाने[३]-शीरी ।
जब दिल को रज पहुँचा, क्या लुफ्त[४] गुफ्तगू का[५] ।

छूरी का, तीर का, तलवार का तो घाव भरा ।
लगा जो जख्म-जबा का, रहा हमेशा हरा ।।

– ईश्वर प्रेम –

खुदा से लौ लगा, हर्गिज न फँस दुनिया की उलभन मे ।
लिबास उजले से क्या हासिल, सफाई चाहिए दिल मे । ,बिस्मिल'

---

१ - अत्युपकार पाने की शिकायत - २ उचित ३ - मधुर वचन ४ - मजा
५ - बातचीत

दुनिया मे इक सकून[1] का जरिया हो जब यही ।
इन्सान तुझसे[2] लौ न लगाए तो क्या करे ? 'अफसर'

तर्क कर अपनी खुदी-तुझको खुदा मिल जाएगा ।
कौन कहता है कि ढूढे से खुदा मिलता नही । 'हुनर'

कोई काबे को जाता है, कोई बुतखाने को ।
राह उस यार के मिलने की मगर और ही है । 'जफर'

आराम अगर चाहे तो आ राम की तरफ ।
फदे मे फसा चाहे तो जा दाम की तरफ । 'असगर'

तेरी तसवीर से खाली नही है, कोई महफिल भी ।
मगर पहचानने वालो से पहचानी नही जाती ॥ हसरत'

तुझसे मागू मैं तुझी को कि सभी कुछ मिल जाय ।
सौ सवालो से यही एक सवाल अच्छा है ॥

खुदी जब तक रहे इन्सान मे उसको नही पाता ।
यह पर्दा उठ गया दिल से तो वह पर्दानशी पाया ।। 'सादिक'

ढूढा सब जहान मे, पाया पता तेरा नही ।
जब पता तेरा मिला तो अब पता मेरा नही ॥

---

१ - शान्ति २ - लगन